ISSN 0974-1100

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ

A Social Science Research Journal

वर्ष 21 अंक 83 एवं 84 ■ संयुक्तांक ■ अक्टूबर, 2015-मार्च, 2016

सम्पादक
डॉ.हरिमोहन धवन

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ *A Research Journal of Social Sciences*

वर्ष 21 अंक 83 एवं 84 संयुक्तांक अक्टूबर, 2015– मार्च, 2016

❐

सम्पादक

डॉ. हरिमोहन धवन

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

बाण भट्टमार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र) 456010

दूरभाष (0734) 2518737

email- mpdsaujn@gmail.com

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

परामर्श

पद्मश्री डॉ. श्यामसिंह शशि
प्रख्यात लेखक एवं साहित्यकार,नईदिल्ली

डॉ. श्यामसुन्दर निगम
निदेशक, श्री कावेरी शोध संस्थान, उज्जैन

सम्पादक मण्डल

डॉ. जयप्रकाश कर्दम
वरिष्ठ साहित्यकार एवं सम्पादक, दलित साहित्य वार्षिकी, नईदिल्ली

डॉ. आर. जी. सिंह
पूर्व आचार्य, समाजशास्त्र,
बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान संस्थान, महू

डॉ. रहमान अली
पूर्व आचार्य,प्राचीन भारतीय इतिहास,संस्कृति व पुरातत्व अध्ययन शाला,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

सह–सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : पी. सी. बैरवा

© स्वात्वाधिकारी : मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी,
बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र.)

इस अंक का मूल्य रूपये 150/–

वित्तीय सहयोग
भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नईदिल्ली

सम्पादन व प्रकाशन सर्वथा अवैतनिक एवं अव्यवसायिक
पूर्वदेवा में प्रकाशित लेख एवं उनमें व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार है.
सम्पादक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है.

पूर्वदेवा मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी की सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

अनुक्रम

1-	समतामूलक समाज की अवधारणा में डॉ. भीमराव अम्बेडकर की प्रतिष्ठापना	डॉ. डी.एन. प्रसाद	*1*
2-	डॉ.अम्बेडकर समतामूलक समाज के प्रेरक	डॉ. रमेश एच.मकवाना	9
3-	डॉ. भीमराव अम्बेडकर तथा जातिविहीन समतामूलक समाज : चुनौतियाँ एवं समाधान	डॉ. अरूण कुमार	*15*
4-	डॉ. अम्बेडकर, समतामूलक समाज, जाति और धर्म	डॉ. दीपिका गुप्ता	*39*
5-	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामाजिक सद्भाव और समावेशी विकास	डॉ. जनकसिंह मीना	45
6-	डॉ. अम्बेडकर का जातिविहीन समतामूलक समाज एवं आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक न्याय	डॉ. हरिकृष्ण बडोदिया	*62*
7-	डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में जातिविहीन समाज और राष्ट्र का सशक्तिकरण	श्रीमती प्रतिभा नामदेव	71
8-	डॉ. अम्बेडकर, सामाजिक न्याय एवं जातिविहीन समतामूलक समाज	कपिलबाला पांचाल	*77*
9-	महिला सशक्तिकरण का बालिका अनुपात पर प्रभाव	डॉ. बिन्दु महावर	*88*
10-	सामाजिक समता एवं भारत का संविधान तथा कानून	डॉ. कुसुम मेघवाल	*94*

इस अंक के लेखक

डॉ. डी.एन. प्रसाद– प्राध्यापक–महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महा.)

डॉ. रमेश एच. मकवाना– सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्या नगर, आणद (गुजरात)

डॉ. अरूण कुमार– प्रभारी प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, विजयराघवगढ़, कटनी (म.प्र.)

डॉ. दीपिका गुप्ता– आचार्य–राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. जनकसिंह मीना– सहा. प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान, जयनारायण विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

डॉ. हरिकृष्ण बडोदिया– सहा.प्राध्यायपक–समाजशास्त्र, शास. महाविद्यालय, सैलाना, रतलाम (म.प्र.)

श्रीमती प्रतिभा नामदेव–सहा.प्राध्यापक, शास. माधव विज्ञान महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

कपिलबाला पांचाल–8, मंशामन गणेश कालोनी, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. बिन्दु महावर– सहा.प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शास. कला एवं वाणिज्य महा., भोपाल (म.प्र.)

डॉ. कुसुम मेघवाल– 344, अम्बामाता स्कीम, उदयपुर (राजस्थान)

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 83–84, अक्टूबर,2015–मार्च,2016 पृ. 1–8 ***ISSN 0974 -1100***

समतामूलक समाज की अवधारणा में डॉ. भीमराव अम्बेडकर की प्रतिष्ठापना

डॉ. डी. एन. प्रसाद

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार ''न्याय सामान्यतः स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुता का ही दूसरा नाम है । यदि सभी व्यक्ति समान है, तो सभी मनुष्य एक ही सार–तत्व के हैं और सार–तत्व उन्हें समान मौलिक अधिकारों एवं समान स्वतंत्रता के लिए अधिकारी बनाता है ।''[1]

उपर्युक्त अंशों के अध्ययनोपरांत हम पाते हैं कि डॉ. अम्बेडकर दुनिया के विभिन्न देशों के कितने सामाजिक क्रांति और वहाँ के साहित्य का अवलोकन किये होगें, जिसका परिणाम उनके सोच में झलक रहा है । फ्रांस में 1789 ई. में जो क्रांति हुई थी उसमें वहाँ के क्राँतिकारी बुद्धिजीवियों ने यह उद्घोष किया था कि एक अच्छा समाज बिना स्वतंत्रता, समानता और बंधुता के निर्मित नहीं हो सकता ।

सामाजिक न्याय' में 'सामाजिक' पद संपूर्ण मानव जीवन का वाचक है, न कि किसी वि ाष्ट वर्ग या जाति का! जिसमें–आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक एवं विधिक इत्यादि सम्पूर्ण सामाजिक आधार समाहित है। जिस तरह से कुटिल बुद्धिजीवियों ने मनुस्मृति जैसी अमानवी ग्रंथ का निर्माण किया, जिसके अंतर्गत किसी एक वर्ग और जाति को प्राथमिकता दी गई, पर डॉ. अंबेडकर ने इस व्यवस्था को पहचाना और इसका विरोध किया। वे संपूर्ण मानव को आधार में रख कर चिंतन करते थे। भारत का संविधान, जो मानव को समान अवसर प्रदान करता है, यह सभी डॉ. अंबेडकर के चिंतन का परिणाम है।

डॉ. अंबेडकर ने बड़े आग्रह के साथ कहा, ''मेरे जीवन–दर्शन में स्वतंत्रता का महत्व है। लेकिन, उसी के साथ अनिर्बंध स्वतंत्रता समानता के लिए खतरनाक भी होती है।''[2] डॉ. अंबेडकर स्वतंत्रता के पक्षधर थे पर अनुशासन के बगैर नहीं। वे अनुशासन रहित स्वतंत्रता के समर्थक नहीं थे। एक की स्वतंत्रता से अगर दूसरे को हानि होती है तो वे उसके खिलाफ थे। वे हमेशा सम्पूर्ण समाज और राष्ट्र के बारे में चिंतन किया करते थे।

डॉ. अंबेडकर का कहना है कि ''स्वतंत्रता की उन्नति के लिए जिन स्थितियों की आवश्यकता होती है, हिंदू धर्म उसके विरूद्ध है।''[3] हिंदू धर्म वर्ण और जाति पर आधारित है जो समतामूलक समाज के निर्माण में किसी भी दृष्टि से अग्रसर नहीं है। जहां ऊँच–नीच, बड़ा छोटा, छुआ–छूत आदि सामाजिक कुरीतियों को प्रश्रय मिलता हो, वह सभ्य समाज नहीं कहला सकता। इसलिए कह सकते हैं कि हिंदू संस्कृति अपनी अन्य विशेषताओं के बावजूद, समतामूलक समाज बनाने में असफल रही है; क्योंकि जिसकी नींव ही गैर बराबरी की जमीन पर आधारित हो, वह समाज समतामूलक कैसे हो सकता है?

डॉ. अंबेडकर द्वारा हिंदू धर्म का विरोध किए जाने की एक मुख्य वजह उसमें समानता का निषेध है। डॉ. अंबेडकर का कहना है कि असमानता हिंदू धर्म की आत्मा है। खासकर, मनुस्मृति के द्वारा शूद्रों के जीवन की प्रत्येक अवस्था में असमानता के तत्व को लागू किया गया। यह बात गुलामी, विवाह तथा दंड संबंधी मनुवादी व्यवस्था के अवलोकन से साफ–साफ दृष्टिगोचर होती है जिस तरह मनुवादियों ने मनुस्मृति के नियमों को लागू किया, उसके अध्ययन से पता चलता है कि किस तरह का दंड विधान बनाया गया था। उस दंड विधान में साफ–साफ वैमनस्यता को देख सकते हैं। पूरी व्यवस्था के अंतर्गत शूद्रों को मनुष्य होने के बावजूद मनुष्य नहीं समझा गया और दंड विधान इस तरह तैयार किया गया कि शूद्र मनुष्य न होकर जानवर हैं।

डॉ. अंबेडकर समान सुविधाओं, समान अवसरों तथा समान प्राथमिकताओं पर बल देते थे। वे प्रत्येक मानव को कानून की दृष्टि में समान समझते थे और

जहां तक मानव की कुछ सामान्य विशेषताओं का प्रश्न है, वहाँ पर समानता का सिद्धांत स्वीकार करते थे। उनकी दृष्टि में, सभी मानवों को सैद्धांतिक दृष्टि से समान समझना लोकतंत्र का मौलिक आधार है। वर्ण, जाति, धर्म, लिंग, वर्ग एवं राष्ट्र से परे सब मानवों में एक सामान्य विशेषता है। मानव सामाजिक के साथ–साथ बौद्धिक प्राणी भी है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि जहां अन्याय एवं अत्याचार को जो सहता है, वहां पर सामाजिक उपद्रव होते रहते हैं । डॉ. अंबेडकर ने भी कहा है कि ''यदि आर्थिक समानता नहीं लाई गई, तो जनतांत्रिक व्यवस्था भी ज्यादा दिनों तक नहीं टिक पाएगी।''[4] पूरे संविधान में कहीं भी कट्टरता, कटुता और उच्च वर्णों के प्रति द्वे ा का भाव नहीं है। यही उनके समाज के प्रति सच्ची सोच को दर्शाती है।

''लेकिन, हिंदू धर्म की वर्ण–व्यवस्था और उससे निकली जाति–व्यवस्था स्तरीय असमानता पर आधारित होने के कारण बंधुता को बाधित करती है। इसमें चारों वर्णों के बीच ऊँच–नीच की भावना तो है ही, इन वर्णों के अंतर्गत भी सैकड़ों जातियाँ हैं, जिसमें आश्चर्यजनक रूप से भेदभाव, घृणा एवं द्वेष मौजूद है।''[5] मनुष्य सामाजिक प्राणी है, यह इसलिए है, क्योंकि मानव संबंध बंधुता पर आधारित होता है, लेकिन जिस समाज में एक दूसरे के सामने आने पर सज़ा मिले, उस समाज को 'वसुधैवकुटुम्बकम' कैसे कह सकते हैं!

''वर्ण–व्यवस्था और जाति–व्यवस्था ने हिंदू समाज के निम्न तबके को किसी भी प्रकार की प्रत्यक्ष वृति के लिए पूर्णरूपेण अयोग्य बना दिया। वे शास्त्र धारण नहीं कर सकते और बगैर शास्त्र के विद्रोह कैसे होगा? फिर, शिक्षा के अभाव में न वे अपनी मुक्ति के बारे में कुछ सोच सकते थे और न ही कोई जानकारी प्राप्त कर पाते थे। इस तरह शूद्रों, अतिशूद्रों एवं स्त्रियों को निम्न एवं वंचित बनाकर रखा गया।''[6] जिस देश की स्त्रियों को पढ़ने से वंचित रखा गया हो और अधिकांश जनता को अछूत घोषित किया गया हो, उस देश की प्रगति कभी भी संभव नहीं है।

डॉ. अंबेडकर का कहना है कि ''बंधुता सर्वोच्च मानव मूल्य है, जो मानव को दूसरों की भलाई करने के लिए प्रेरित करती है।''[7] इनके विचार को पढ़ने के बाद अहसास होता है कि कितने उच्च विचारों से विभूषित थे डॉ. अंबेडकर। उनके चिंतन के दायरे में सम्पूर्ण मानव है। वास्तव में वे पहले मानव थे जिनका चिंतन अमानवीय जीवन जी रहे शूद्रों पर गया। इसलिए उन्होंने कहा है कि अगर किसी समाज में केवल जन्म के कारण सजा मिले, तो वह समाज सभ्य कैसे हो सकता है? इस संदर्भ में अगर गांधी का प्रतिरोध नहीं होता तो शायद आज भारत की तस्वीर और तदवीर दोनों अलग होती।

डॉ. अंबेडकर के अनुसार–शिक्षित बनना मनुष्य के चहुँमुखी विकास के लिए आवश्यक है मनुस्मृति के अनुसार शूद्रों का पढ़ना दंडनीय अपराध माना जाता था। उनके कान में शीशा पिघलाकर डाल दिया जाता था। शूद्रों के लिए पढ़ाई के सारे रास्ते बंद थे। धार्मिक ग्रंथ वे छू नहीं सकते थे, क्योंकि उसके लिए भी अलग दंड विधान थे।

डॉ. अंबेडकर का मानना था कि – ''एक अज्ञानी मनुष्य स्वतंत्र हो सकता है, लेकिन वह अपनी स्वतंत्रता का उपयोग नहीं कर सकता जो प्रगति के लिए आवश्यक है। इसलिए डॉ. अंबेडकर ने शूद्रों को एक सूत्र दिया– 'शिक्षित बनो, संगठित होओ और संघर्ष करो'।

स्त्री–अधिकारिता से जुड़े 'हिंदू कोड बिल' का निर्माण स्त्री–मुक्ति आंदोलन को उनकी अमूल्य देन है। डॉ. अंबेडकर की सबसे बड़ी विफलता यही रही कि वह हिंदू कोड बिल पास नहीं करा पाये, जिसके कारण उन्होंने कानून मंत्री से इस्तीफा दे दिया। और जब मनुवादियों ने इकट्ठा होकर डॉ. अंबेडकर के खिलाफ हुए तो उन्होंने अतिशूद्रों को बौद्ध धर्म अपनाने की सलाह दी और नागपुर में लगभग दस लाख अतिशूद्रों के साथ डॉ. अंबेडकर ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। डॉ. अंबेडकर धर्म को मानव जीवन एवं समाज–व्यवस्था के लिए आवश्यक मानते थे। उनका कहना है कि धर्म की आवश्यकता गरीबों के लिए

होती है। दुखी और पीड़ित लोगों के लिए धर्म की आवश्यकता होती है। गरीब मनुष्य सदा ही आशा पर जिंदा रहता है। जीवन का मूल आशा में है। अगर आशा नष्ट हो गई, तो जीवन कैसे चलेगा? उनके शब्दों में, 'मनुष्य मात्र रोटी के सहारे जीवित नहीं रह सकता। उसका एक मस्तिष्क भी होता है, जिसे विचार रूपी खुराक की जरूरत होती है।''[8]

''जब कभी भी इस देश में सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु संघर्ष हुए, तो ब्राह्मणवादियों ने उनका बेरहमी से दमन किया और यदि वे इस दमन से सफल नहीं हुए, तो फिर उस संघर्ष को ऐन–केन–प्रकारेण 'डायल्यूट' एवं 'डायअर्ट' कर दिया।''[9] ऐतिहासिक पूनापैक्ट में मनुवादियों ने पहले डॉ. अंबेडकर को धमकाया और गांधी जी जब आमरण अनसन पर बैठ गए तो अंबेडकर को उनकी बात माननी पड़ी। यही डॉ. अंबेडकर से भूल हुई।

यदि आज भारत की अधिकांश जनसंख्या में लोग पौरूषहीन हैं और उनका मनोबल नष्ट हो गया है, तो उसका मुख्य कारण है– ब्राह्मणों की शूद्र–द्रोही नीति, जिसे वे युग–युगांतर से अपनाते चले आ रहे हैं।''[10] ब्राह्मणों ने शूद्रों के लिए घोर सामंती और मानवता विरोधी नियम बनाए जिसके कारण अतिशूद्रों में आज भी पौरुषहीनता और गिरा हुआ मनोबल देखने को मिलता है। इस तरह, शूद्रों, अस्पृश्यों और स्त्रियों के लिए ब्राह्मणवादियों ने जो घृणित विधान रचे, वह सर्वविदित है। ब्राह्मणों ने हमेशा शासक जातियों से इस शर्त पर अपने को जोड़े रखा कि वे शासक जातियाँ उनके अधीन रहकर उन्हें सहयोग करें।

जुलाई 1942 को नागपुर में संपन्न हुए 'दलित वर्ग परिषद्' के सम्मेलन में उन्होंने कई हजार स्त्रियों की सभा को संबोधित करते हुए कहा, ''मैं स्त्री संगठनों पर अधिक उम्मीदें रखने वाला इंसान हूँ।''[11] जिस घर में स्त्रियाँ पढ़ी लिखी न हो तो उस घर में अगली पीढ़ी जो तैयार होगी वह कम–से–कम अच्छी तो नहीं हो सकती। कई उदाहरण हैं जहाँ पढ़ी–लिखी माँ न होने पर भी गुणवान बच्चे हुए हैं। पर यह हर जगह नहीं है। जिस परिवार की नींव ही कमजोर हो, उससे

परिवार कैसा बनेगा? डॉ.अंबेडकर के द्वारा 'हिंदू कोड बिल' का निर्माण स्त्री–अधिकारिता की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम था। इसमें हिंदू स्त्रियों के लिए उन सभी लोकतांत्रिक अधिकारों का प्रावधान था, जिसे 'मनुस्मृति' एवं अन्य हिंदू विधि शास्त्रों द्वारा वंचित कर दिया गया था।

डॉ. अंबेडकर कहते हैं – ''संसार की पूरी व्यवस्था मानव पर आधारित है और प्रत्येक वस्तु एवं विचार मानव एवं समाज से जुड़ा है।''[12] यह उनके गहन चिंतन और प्राणी मात्र के लिए सोच को दर्शाती है। यह वही कह सकता है जो मनुष्य होते हुए भी अमानवीय जीवन को चखा हो। दुर्भाग्य से डॉ. अंबेडकर ने इसे जिया और जीवन भर उस व्यवस्था के खिलाफ अपने जीवन की सारी ऊर्जा लगा दी तथा जीवन–पर्यंत संघर्ष करते रहे। उन्होंने कहा था, '26 जनवरी 1950 को हम अंतर्विरोधों के जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में हमें समानता प्राप्त होगी पर सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में हमें समानता प्राप्त नहीं होगी। राजनीति में हम 'एक व्यक्ति, एक वोट और एक वोट एक मूल्य' सिद्धांत को मान्यता देंगे। सामाजिक तथा धार्मिक जीवन में हम 'एक व्यक्ति एक मूल्य' के सिद्धांत को नकारते रहेंगे।

डॉ. अंबेडकर तो यहाँ तक कहते हैं कि ''अच्छी सरकार या व्यवस्था के लिए योग्यता और क्षमता ही काफी नहीं है, आवश्यकता ऐसे शासक वर्ग की है, जिसमें जन–कल्याण की भावना हो।''[13] वे सामान्य से इतर गहराई में जाकर चिंतन करते थे। उन्होंने कितनी बारीकी से कहा कि योग्यता और क्षमता ही काफी नहीं है बल्कि यह देखना होगा कि शासक वर्ग जन–कल्याण का कितना पक्षधर है! लेकिन यह विशेषता न आजादी के बाद देखी गई, न आज के दौर में देखी जाती हैं।

शासक जातियों ने ये अधिकार इसी आरक्षण के बलबूते पर बटोरे हैं, जिसका आज वे विरोध कर रहे हैं। उच्च वर्गों की जातियों ने जिन हथकंडों को अपना कर समाज में अपना स्थान स्थापित किया है, वही कानून, आजादी के बाद शूद्रों के लिए लागू किया गया तो उच्च वर्ग विरोध पर उतर आए। और अब उच्च

वर्ग आर्थिक आधार पर आरक्षण की बात करते हैं। आज आर्थिक विषमता इस तरह से बढ़ रही है कि जो गरीब है वह लगातार गरीब हो रहा है और जो अमीर है वह अमीर होता जा रहा है। यह एक प्रकार से अंकीय विभाजन है। अब समतामूलक समाज बनाने में सबसे बड़ी विशमता आर्थिक विषमता की है। इस खाई को अगर शासक वर्ग मिटाने में कामयाब हो जाते हैं तो कुछ बात बन सकती है। पर ऐसा दूर–दूर तक नहीं लगता। 1940 की जनगणना में हिंदुओं ने अलग से यह अभियान चलाया कि जनगणना में कोई अपनी जाति न लिखवाए। अछूतों से कहा गया कि वे जाति का उल्लेख न करें, वे केवल यही लिखवाएँ कि वे हिंदू हैं, तो उनके साथ अन्य हिंदुओं की तरह बर्ताव किया जाएगा और किसी को यह पता भी नहीं चलेगा कि वे अछूत हैं। अछूत इस झांसे में आ गए। इससे अछूतों की संख्या का आंकड़ा घट गया और हिंदुओं का बढ़ गया।''

जवाहरलाल नेहरू का यह कथन डॉ. अंबेडकर द्वारा मानवअधिकारों हेतु किए गए संघर्षों की ओर इशारा कराते है। ''सचमुच, डॉ. अंबेडकर का संपूर्ण जीवन–दर्शन मानवअधिकारों के लिए समर्पित था।''[14] कुछ हद तक बड़े नेता यह चाहते थे कि सामाजिक विषमता खत्म हो और समतामूलक समाज बने। लेकिन वे चाह कर भी नहीं कर सकते थे क्योंकि पूरब से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक ब्राह्मणवादियों ने जिसे सदियों से गुलाम बना रखा था, जिसके कारण उनके जीवन और जगत् में सब कुछ सुचारु रूप से चल रहा था। वह कभी इतनी आसानी से कैसे छोड़ सकते थे। इसलिए उन्होंने इसका विरोध किया। वैसे डॉ. अंबेडकर के दर्शन में न केवल दलितों, अपितु सभी शोषित–पीड़ित एवं वंचित समूहों यथा आदिवासियों, श्रमिकों, महिलाओं, बच्चों आदि के भी कल्याण की भावना निहित है।

डॉ. अंबेडकर अहिंसा को सभ्य समाज का आदर्श सिद्धांत मानते हैं, मगर न्याय की रक्षा के लिए आवश्यक हिंसा को भी उचित ठहराते हैं। वे हिंसा को नियम अथवा पद्धति के रूप में स्वीकार नहीं करते थे, वरन वे हिंसा को आवश्यक मानते थे, जहां इसके बिना आत्म–सम्मान, सामाजिक सुरक्षा एवं न्याय की रक्षा

नहीं हो पाए। अतः शांतिपूर्ण समरस समाज के लिए न्याय की रक्षा आव यक है। और शांति जो न्याय पर आधारित हों, अर्थात् जब तक दुनिया में न्याय के प्रति सम्मान नहीं होता, तब तक किसी प्रकार की शांति संभव नहीं हो सकती। वस्तुतः समरस समाज या समतामूलक समाज की अवधारणा और स्थापना हेतु भारतीय वैश्विक चिंतक डॉ. भीमराव अंबेडकर का अवदान अक्षुण्ण है, जरुरत है इसे व्यावहारिक बनाने की ताकि सामाजिक शांति की संकल्पना साकार हो सके।

❐

सन्दर्भ –

1. *सुधां J भोखर (2014) सामाजिक न्याय, अंबेडकर–विचार और आधुनिक संदर्भ, पृ. 21, द ीना पब्लिके ान, भागलपुर*
2. *वही, प . 32*
3. *वही, प . 34*
4. *वही, प . 38*
5. *वही, प . 39*
6. *वही, प . 40*
7. *वही, प . 41*
8. *वही, प . 49*
9. *वही, प . 57*
10. *वही, प . 58*
11. *वही, प . 83*
12. *वही, प . 138*
13. *वही, प . 155*
14. *वही, प . 173*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 83–84, अक्टूबर,2015–मार्च,2016 पृ. 9–14 ***ISSN 0974 -1100***

डॉ. अम्बेडकर समतामूलक समाज के प्रेरक

डॉ. रमेश एच. मकवाणा

डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक विख्यात विद्वान, विशिष्ट शिक्षाविद, क्रांतिकारी परिवर्तनों के पक्षधर और अन्यायों के सामने लड़ने वाले निर्भीक हिमायती थे । उन्होंने असमानता, अन्याय और अंधविश्वास के विरोध करने का और समाज में से उनकों दूर करने का महत्वपूर्ण कार्य किया । डॉ. अम्बेडकर समतामूलक समाज की स्थापना के आंदोलन का महानायक है । उन्होंने अपना पुरा जीवन शोषण, अत्याचार, छूआछूत और अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने में समर्पित कर दिया । अम्बेडकर ने कहाकि हिन्दू समाज में व्याप्त जाति प्रथा एवं छूआछूत समता आधारित समाज के विरूद्ध है । इन संदर्भ में खास उनकी सबसे अधिक रूचि जाति समस्या में थी । जाति के उद्‌भव और उसके स्वरूप की खोज करना तथा उसे नष्ट करना उनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य था ।

डॉ. अम्बेडकर के प्रमुख विचार है जिनके आधार पर दलितों, शूद्रों अल्पसंख्यकों को सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार मिल सकता है, लोकतांत्रिक अधिकार प्राप्त हो सकते हैं और उनके लिए सामाजिक मुक्ति का मार्ग सुलभ हो सकता है । उनका मानना था कि जातिवाद से अस्पृश्यों के साथ मानवीय व्यवहार नहीं किया जाता । उनका मत था कि जातिवाद पर आधारित समाज में स्वतंत्रता समानता तथा भातृभाव के सिद्धांतों का कोई मतलब नहीं । उनका आदर्श ऐसे समाज की रचना करना था जो समता, स्वतंत्रता और भातृभाव पर

निर्भर हो । एक आदर्श समाज में अनेक वर्ग विधमान रहें और वे एक दूसरे के हितों को समझें और सहयोग करें । इसलिए वे सामाजिक चेतना पर जोर देते थे ।

अस्पृश्यों के उत्थान के लिए उन्होंने 20 जुलाई 1924 को मुम्बई में ''बहिष्कृत हितकारिणी सभा'' की स्थापना की । अछूतों को समान अधिकार दिलाने के लिए उनका यह पहला प्रयत्न था । अछूतोद्धार की श्रृंखला में डॉ. भीमराव द्वारा 1927 ई. में चलाया गया 'महाड़ तालाब सत्याग्रह' प्रथम क्रान्तिकारी लड़ाई थी । इस आन्दोलन के द्वारा भीमराव ने तालाब के पानी को सभी के लिए प्रयोग का कानूनी अधिकार दिलाने में सफल रहे । अस्पृश्यों की प्रगति के लिए आन्दोलन के इतिहास में तीसरी घटना नासिक की है । नासिक के कालाराम मन्दिर में अछूतों का प्रवेश निषेद्य था । यह आन्दोलन से मन्दिर सभी के लिए खोल दिया गया । 1930 की प्रथम गोलमेज सम्मेलन में डॉ. भीमराव ने भाग लिया । वहां अछूतों की समस्याओं पर अंग्रेजों के सामने अपना पक्ष रखा । तृतीय गोलमेज सम्मेलन में बाबा साहब ने अंग्रेज हुकमरानों से अछूतों के लिए कम्युनल अवार्ड प्राप्त कर लिया । किन्तु सवर्ण हिन्दुओं में आक्रोश पैदा हो गया । वे परम्परागत व्यवस्था के संवाहक गांधीजी के नेतृत्व में तीव्र विरोध करने लगे । गांधी जी ने 20 सितम्बर, 1932 को दलित वर्ग के लिए अलग निर्वाचक मण्डल के मुद्दे के विरूद्ध यरवडा जेल में आमरण अनशन आरम्भ कर दिया । परिणामतः तत्कालिन परिस्थितियों को देखकर भीमराव ने पूना पैक्ट पर हस्ताक्षर कर दिये । 1932 में पूना पैक्ट के जरिए भीमराव ने गांधी जी के जीवन रक्षा के लिए अलग मत का अधिकार छोड़ा । अतः दलितों का उत्थान ही गांधीजी का मुख्य सरोकार हो गया । जिसके परिणाम स्वरूप सितम्बर 1932 से ही अखिल भारतीय छूआछूत विरोधी लीग की स्थाना की । बाद में 'हरिजन' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया । यही नहीं 1933 से 1934 के बीच गांधीजी ने 12500 मील की 'हरिजन–यात्रा' की ।

भारतीय संविधान के अनु. 15, 16, 29, 30, 165, 275, 330, 335, 338, 341, 342, 366 इत्यादि में अनुसूचित जाति, जनजाति जैसे दलित वर्गों के

कल्याण हेतु उल्लेख किया । डॉ. भीमराव ने अछूतों तथा पिछड़ों के समग्र विकास के लिए सामाजिक, शैक्षिक, राजनैतिक कार्य किया । 1930 ई. के दशक में महाड़ सत्याग्रह हुआ, यह सत्याग्रह भी दलितों में सामाजिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में प्रमुख है । उन्होंने विभिन्न आंदोलन के तहत अस्पृश्यों के लिए मंदिरों में प्रवेश तथा सार्वजनिक कुओं में पानी भरने के नागरिक अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया । उनके अनुसार जातिवाद का स्त्रोत पवित्र शास्त्रों में ढूंढा जा सकता है । अतः उन्होंने प्रत्येक स्त्री–पुरूष से अनुरोध किया कि वह शास्त्रों के प्रभाव से अपने को मुक्त रखें, जिससे जातिवाद से मुक्त हुआ जा सके । उन्होंने अन्तर्जातीय विवाहों पर बल दिया । जिससे दो जातियों के रक्त के मिश्रण से पारस्परिक सम्बन्ध का निकटतम् अनुभव हो और अन्ततः जातिपरक भावना समाप्त हो जाए । गांधीजी भी अम्बेडकर के इस मत से सहमत थे । अतः दलित शोषण एवं असमानता खत्म करके समाज में समानता का वातावरण पेदा करने की अम्बेडकर की कल्पना थी । और इसके पीछे जाति व्यवस्था जैसी कुरीति को समाप्त करने का दृढ़ विश्वास था । समानतामूलक समाज की स्थापना करने का आशय था । जिससे समाज स्वतंत्र, समानता तथा भातृत्व के सिद्धान्तों पर निर्भर हो ।

दलितों के मसीहा डॉ. अम्बेडकर ने स्वतंत्रता आंदोलन में भाग तो नहीं लिया किन्तु उन्होंने अछूतों के लिए प्रमुख रूप से नेतृत्व किया वे अछूतों के नेता के रूप में स्वीकार किये गये । अछूतों को राजनीतिक अधिकार सुरक्षित करवाने के लिए कई रणनीति कई बैठकों और कई सम्मेलनों का आयोजन किया । बम्बई विधानसभा में डॉ. अम्बेडकर को दलित सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया । 24 फरवरी, 1927 को अपने पहले भाषण में बजट की आलोचना करते हुए कहा कि – विश्वविद्यालय की संस्थाओं जैसे सीनेट में दलित एवं पिछड़े जातियों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए । बाद में कुछ बिलों पर संशोधन प्रस्तुत हुए । बम्बई विधानसभा के साइमन कमीशन के साथ सहयोग करने हेतु बनाई गयी समिति का डॉ. अम्बेडकर को सदस्य बनाया गया । डॉ. अम्बेडकर को इस कारण अंग्रेजों का पिठ्ठू और देशद्रोही कहा गया । दलित जातियों के लिए ''बहिष्कृत

हितकारिणी सभा'' की ओर से सीटों के आरक्षण के साथ संयुक्त निर्वाचन मण्डल की मांग की थी ।

20 वीं सदी के स्मृतिकार डॉ. अम्बेडकर के योगदान से समूचा राष्ट्र ऋणी है । डॉ. अम्बेडकर ''मूकनायक'' (अर्थात् गूंगो का नेता) अपनी पहली पत्रिका में समाज को नई दिशा और आंदोलित करने का प्रयास किया । इसी क्रम में दूसरी पत्रिका ''बहिष्कृत भारत'' मराठी पत्रिका बम्बई से प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसके सम्पादकीय लेख में डॉ. अम्बेडकर ने लिखा था कि यदि बाल गंगाधर तिलक एक अछूत के रूप में जन्म लेते तो ''स्वाधीनता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है'' के स्थान पर शायद ''छूआछूत का उन्मूलन ही मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है'' का नारा देते । तीसरी पत्रिका ''इकेलिटी'' और चौथी पत्रिका ''जनमा'' में हिन्दू समाज में रहने वालों की इच्छा एवं दलित जातियों के दुख–दर्दों को अभिव्यक्त किया गया । हिन्दू धर्म के अन्तर्गत छूआछूत या अस्पृश्यता की प्रथा में निहित अन्याय के साथ वर्ण–व्यवस्था को डॉ. अम्बेडकर ने अपनी कृति ''एनीहिलेशन ऑफ कास्टस'' तथा ''कास्ट इन इण्डिया'' में प्रकाश डाला । डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि अछूत ही अछूतों को नेतृत्व प्रदान कर सकता है क्योंकि उच्च जाति, जाति के समाज सुधारक और सन्त दलित जातियों के प्रति सहानुभूति रखते तो थे किन्तु वे इस दिशा में कोई ठोस योगदान नहीं कर पाते थे । डॉ. अम्बेडकर एक राजनीतिज्ञ, बैरिस्ट, संविधानवेता, प्रोफेसर लाखों दलित लोगों के रक्षक और राज्य के लोगों के सच्चे मित्र ने अपनी अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों से सम्मेलन को अत्यधिक प्रभावित किया । दलितों को समानता दिलाने के लिए भारतीय संवधिान में डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 17 के माध्यम से अस्पृश्यता का अंत कर दिया । इसके माध्यम से धर्म, जाति, वर्ण, लिंग जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा । हर व्यक्ति दुकानों, होटलों, सरकारी संस्थाओं में प्रवेश, कुआं, तालाब, घाट और सड़क के प्रयोग के लिए स्वतंत्र है । हिन्दू धर्म और समाज के ऊपर लगे शताब्दियों पुराने कलंक छुआछूत का इस संवधिान के अनुच्छेद से अन्त कर दिया । अब सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक दोनों दृष्टियों से मनु के मनुस्मृति के कानून समाप्त हो गये ।

डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि से अस्पृश्यता की जड़े हिन्दू वर्ण या जाति व्यवस्था में निहित है । इसलिए इन व्यवस्था के अंत के लिए वर्ण व्यवस्था को समाप्त करना जरूरी है । हिन्दू धर्म की आलोचना करते हुए महात्मा बुद्ध की 2441 वीं जन्म वार्षिकी अवसर पर नईदिल्ली में कहा गया कि ''जो धर्म हमें तुम्हें पानी देने को तैयार नहीं वह धर्म नहीं सजा है ।'' 13 अक्टूबर 1935 को डॉ. अम्बेडकर ने एक दलित सम्मेलन में कहा कि ''मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मै मरते समय तक हिन्दू नहीं रहूगाँ ।'' डॉ. अम्बेडकर की इस भाषण ने सभी क्षेत्रों, राजनीतिक दल और सामाजिक संस्थाओं के अन्तर्मन तक हिला कर रख दिया । '' तत्पश्चात डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं एक अनुयायि के साथ 14 अक्टूबर 1956 को बौद्धधर्म को नागपुर में स्वीकार किया । अम्बेडकर के सामाजिक क्रान्ति से हिन्दू समाज व्याप्त वर्ण व्यवस्था अथवा जाति व्यवस्था जैसी कुरीति को समाप्त करने की कल्पना की है । अर्थात मार्क्स जिस प्रकार से पूंजीवाद पर सर्वहारा के आच्छादन की अभिकल्पना करता है, ठीक उसी प्रकार से अम्बेडकर ने हिन्दू अभिजात्य वर्ग पर दलित आच्छादन की अभिकल्पना प्रस्तुत की है । अम्बेडकर ने अपने एक लेख में भारतीय दलितों की तुलना निग्रो से की है । यद्यपि यह माना है कि भारतीय अछूत अथवा दलितों की अस्तित्व निग्रो के समतुल्य नहीं है तब भी दलित एवं निग्रों अपनी–अपनी स्थितियों में कहीं न कहीं एक साथ दीख जाते हैं ।

अम्बेडकर ने वैज्ञानिक सोच तथा सामाजिक समानता की प्रेरणा बुद्ध से ग्रहण की । बुद्ध से प्रेरित बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय के साथ दुःख एवं पीड़ा से छूटकारा दिलाना अम्बेडकर का लक्ष्य था । डॉ. अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म हेतु अपने द्वारा किये गये कार्यों के बारे में कहा, ''लोकसभा में रहते हुए मैने बौद्ध धर्म के पुनरूत्थान के लिए कुछ बातें की है । भारत के संविधान का मैं निर्माता हूँ । उसमें पाली भाषा को स्थान दिया है । दूसरी बात यह है कि राष्ट्रपति भवन में भगवान बुद्ध के प्रथम उपदेश ''धर्मचक्र प्रवर्तन'' स्थापित करवाया है । मैने भारत के विधान में अशोक चक्र को भारत के ध्वज पर तथा अशोक स्तम्भ के शीर्ष भाग को भारत की राजमुद्रा में स्वीकृत कराया है । इतना

सब कुछ करते हुवे भी हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और संसद के अन्य सदस्यों द्वारा कोई विरोध नहीं किया गया । डॉ. अम्बेडकर दलितोद्धार के लिए अपने अथक प्रयासों के बावजूद उपयुक्त रास्ता न पाकर अन्ततः ऐसे बौद्ध धर्म ''स्तम्भ को'' का सहारा लिया, जहाँ पहुँचने पर सभी धर्म ठीक उसी प्रकार एक हो जाते हैं जैसे बड़ी–बड़ी नदियाँ समुद्र में मिलने के बाद अपना नाम समाप्त कर एक समुद्र हो जाती है ।

❐

सन्दर्भ –

1. *एम. कुमार, दीप्ति शर्मा, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नईदिल्ली, 2011*
2. *डॉ. बी.एल. महारदा, डॉ. सुनीता पचौरी, डॉ. राव प्रकाश महरदा, अम्बेडकर और सामाजिक न्याय, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 1992*
3. *डॉ. ओंकारनाथ मिश्र, डॉ. ममता मणि त्रिपाठी, अम्बेडकर के विचार : समरस समाज, भारती पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, फैजाबाद (उ.प्र.) 2012*
4. *डॉ. आन, डॉ. अम्बेडकर का मानवतावादी चिंतन, पापुलर प्रकाशन, जयपुर, 1993*
5. *धनंजय कीर, डॉ. अम्बेडकर लाईफ एण्ड मिशन, पापुलर प्रकाशन, जयपुर, 1987*
6. *विश्व प्रकाश गुप्त, भीमराव अम्बेडकर : व्यक्ति और विचार, राधा पब्लिकेशन, नईदिल्ली, 1991*
7. *कृष्णदत्त पालीवाल, डॉ. अम्बेडकर : समाज व्यवस्था और दलित साहित्य, किताब घर, नईदिल्ली, 2005*
8. *डी. आर. जाटव, द सोशल फिलासाफी ऑफ बी.आर. अम्बेडकर, फोनिक्स पब्लिशिंग एजेंसी, आगरा, 1965*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 83–84, अक्टूबर,2015–मार्च,2016 पृ. 15–38 ***ISSN 0974 -1100***

डॉ. भीमराव अम्बेडकर जातिविहीन समतामूलक समाज चुनौतियाँ एवं समाधान

डॉ. अरूण कुमा र

सबको निर्मित किया ईश ने,
देकर सबको सम अधिकार।
जहाँ असमता नहीं फटकती,
वह ईश्वर का है, दरबार।।

मनु य ईश्वर की अनुपम कृति है, जिसने अपने कृतित्व से समाज का निर्माण किया। दरअसल मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणी है। समाज में मिल जुलकर रहने से मनुष्य के व्यक्तित्व का स्वाभाविक विकास संभव होता है। हँसते–हँसते फाँसी के फंदे पर लटकने की हिम्मत रखने वाले भी लंबे एकान्तवास के दण्ड को सहन नहीं कर सकते। वे विक्षिप्त एवं कुण्ठित हो जाते है। अपने स्वयं के सुख साधन के लिये भी एक व्यक्ति की अपेक्षा अनेक व्यक्तियों का एकत्रित प्रयास अधिक फलदायी होता है। साथ–साथ सुरक्षा भी प्रदान करता है। वस्तुतः मनुष्य अपने स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार समाज का निर्माण किया। समाज निर्माण के साथ–साथ सामाजिक परिवर्तन एवं नियंत्रण की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है और आज भी जारी है। आधुनिक समाज के सभी घटक संस्थाएं आज चरमोत्कर्ष पर है,इसके बावजूद समाज में आदर्श समाज की स्थापना नही हो सकी है। इसका प्रमुख कारणों में से एक कारण यह है कि सिर्फ कानूनी प्रावधानों के कारण कोई ठोस सामाजिक परिवर्तन समाज में नही दिखाई

देता, क्योंकि कानून सिर्फ व्यक्ति को ही दण्डित करता है बजाय पूरी सृष्टि समुदाय के । दूसरा सामाजिक बदलाव के मार्ग में प्रमुख बाधायें समाज की पुरातन धार्मिक मान्यताएं है। इन धार्मिक एवं शास्त्रीय मान्यताओं के पीछे हमारी अनगिनत पीढ़ियों का युक्तिपोषण संचित है।

संसार के जीवन व्यवहार के अनुभव से यह एक सर्वमान्य मान्यता बन गयी है कि वही देश व समाज सुखी, सुरक्षित तथा प्रतिष्ठित जीवन प्राप्त करता है, जिसमें इस प्रकार के परस्पर प्रेम, सम्मान, आत्मीयता, एकता एवं सहिष्णुता का दर्शन होता है। भारत में जब–जब समभाव व आत्मीयता की पूर्णता देखी गयी तब–तब उसके वैभव, सामर्थ्य तथा प्रतिष्ठा की संसार में पराकाष्ठा होती गयी। परन्तु जब–जब समभाव, आत्मीयता एवं बराबरी के पूर्ण बिम्व का क्षय हुआ तब–तब भारतीय समाज श्रीहीन, विद्याहीन एवं दुर्बल होकर विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा शोषित, दमित एवं खण्डित हुआ।

भारतीय इतिहास के कुछ काल विशेष को छोड़कर अधिकांश काल में समाज में विषमता व्याप्त रही है। शोषण, दमन एवं उपेक्षा का कुचक्र चलता रहा है। इसका प्रमुख कारण भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति व्यवस्था है। भारतीय समाज आज अनेकता में एकता जैसी विशेषताओं का पोषण करने में असहाय होने लगा है, क्योंकि लोकतंत्र एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता की आधुनिक मान्यता ने सामाजिक समरसता उत्पन्न करने के बजाए जाति सम्बन्धी माया को महिमामंडित किया है। आज समाज में प्रत्येक जाति उच्च स्थान प्राप्त कर अधिकाअधिक सामाजिक मर्यादा प्राप्त करना चाहती है।

भारत में जाति व्यवस्था सिर्फ हिन्दुओं तक सीमित नहीं है। इस सामाजिक व्यवस्था में इतनी शक्ति है कि इस देश का कोई भी अन्य धर्म एवं संगठन इसके प्रभा मण्डल से अछूता नही रह पाता है। यही कारण है कि इस देश में आने वाले विदेशी समूह या तो इस सामाजिक व्यवस्था के अभिन्न अंग हो गये या तो अलग अस्तित्व रखते हुए भी जाति प्रथा को अगीकार कर लिया है। इस लिये इस देश के दूसरे धर्मो में भी जातियाँ पायी जाती है। अभी हाल में ही एन्थ्रोपोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की एक रिपोर्ट के अनुसार इस देश में मुसलमानों में 584 जातियाँ, ईसाई में 339 जातियाँ, सिक्खों में 130 जातियाँ, जैन

में 100 जातियाँ, बौद्धों में 93 जातियाँ, पारसी में 19 जातियाँ, यहूदी में 9 जातियाँ, तथा सबसे अधिक हिन्दू में 4635 जातियाँ पायी जाती है। मंडल आयोग ने सिर्फ पिछड़ी जातियों की संख्या 3695 बतलाई है। सब मिलाकर भारतीय समाज जातियों का जंगल एवं दंगल है।

विश्व के प्रायः सभी परम्परागत समाजों में जन्मगत एवं वंशगत श्रेष्ठता का भाव देखने को मिलता है। कुलीनता की धारणा बहुत कुछ इस विश्वास पर आधारित थी कि योग्यता वंशगत लक्षण है। समाज का शासक, सैनिक, उत्पादक इत्यादि वर्गो में विभाजन कमोबेश सभी समाजों में देखने को मिलता है। सामान्यतः सभी समाजों में कुलीनता एवं विशेषाधिकार वंशगत थे। सभी समाज में शादी–विवाह और सामाजिक मेल मिलाप में वंश एवं कुल का ध्यान दिया जाता था। भारत इसका अपवाद नही था। परन्तु अन्य समाजों में यह विधान और विभाजन लचीला था। भारत में भी वैदिक समाज में यह लचीलापन था। किन्तु कालांतर में यह लचीलापन समाप्त हो गया है। वर्ण जातियों में परिवर्तन हो गये। जातियाँ जन्मगत हो गयी। जो व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता उसी में पलता, बढ़ता एवं मरता है। जाति व्यवस्था कठोर हो गई, इसमें ऊंच–नीच का भेद–भाव बढ़ गया। जातिगत संचरना के कारण समाज में असमानता जन्मगत, श्रेणीबद्ध तथा अपरिवर्तनीय थी। शास्त्रीय विधान के चलते कुछ जातियों को तो विशेषाधिकार प्राप्त थे, जबकि अधिकांश जातियाँ निर्योग्यताओं से ग्रसित एवं पीड़ित थी।

विश्व में अन्य देशों ने नये विचारो को अपनाया, उनमें क्रांतियाँ हुई तथा उनके समाज के बुनयादी ढ़ाँचें में बदलाव भी आया। परन्तु भारत में ऐसा नही हुआ और न निकट भविष्य में इसका कोई असार परिलक्षित होता है। ऐसा नही की भारत में नये विचार पैदा नही हुये और न ही बाहर से ऐसे विचार, जिनसे क्रांतिकारी बदलाव आया, का यहाँ प्रसार नही हुआ। ऐसा भी नही कि समाज को बदलने की यहाँ कभी कोशिश नही हुई। फिर भी हकीकत यह है कि समाज के बुनियादी ढ़ाँचे में यहाँ कोई विशेष फर्क नही आया। समाजिक संरचना के बुनियादी तत्व के रुप में जाति व्यवस्था भारतीय समाज में आज भी बहुत कुछ

वैसी ही बनी हुई है, जैसी की हजारों साल पहले थी। आश्चर्य तो इस बात का है कि आज देश में कोई भी ऐसा व्यक्ति नही जो कि जाति की वकालात करता हो। बुद्धिजीवी, नेता और समाज सुधारक तो जाति की खुलेआम खिलाफत करते है। देश का कानून भी जाति के विरुद्ध है। फिर भी जाति का अस्तित्व यहाँ मुकम्मल रुप से कायम है।

भारत में जातियों की उत्पत्ति वर्ण व्यवस्था से मानी जाती है। यह भी माना जाता है कि आदिकाल में वर्णो का निर्धारण काम के आधार पर किया गया था जबकि जाति की मुहर व्यक्ति के जन्म से लगती है। वर्ण व्यवस्था अपने आरंभिक दौर में लचीली थी। इसके सामाजिक दुश्कार्य कम थे। कालातंर में यह जाति व्यवस्था में रुपांतरित हो गई, जिससे समाज का विभाजन कठोर हो गया। समाज में भेदभाव बढ़ा और आपसी फूट पैदा हुई। जाति व्यवस्था भारतीय सामाजिक ढ़ाँचे का एक संस्तरीकृत स्वरुप है। जिसमें थोड़ी सी जाति शीर्ष पर, अनेकानेक जाति बीच में तथा अनगिनत जातियाँ मूल से अवस्थित है। इसमें ऊँच–नीच का संस्तरण पाया जाता है। जाति संस्तरण में शीर्ष की जातियों को विशेषाधिकार प्राप्त होता है। शीर्ष से जैसे–जैसे नीचे की और जाते है, जातियों का अधिकार घटते जाते है। इस व्यवस्था में भी द्विज जातियों (ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य) को विशेषाधिकार मिले हुये है, तथा शूद्र बिल्कुल अधिकार विहीन है। अन्त्यज जातियों की स्थिति तो दास एवं जानवर से भी बदत्तर होती है। जातियों में ऊँच–नीच के भेद के कारण एक हिन्दू दूसरे से अपने को बड़ा या छोटा समझने लगा, गैर बराबरी उत्पन्न हो गया। अलग–अलग जातियो में बँट जाने से हिन्दू समाज में एकता, सहिष्णुता, सहयोग एवं भाईचारा कम हो गया। आज विषमता इस कदर हो गई है, कि चार वर्ण से चार हजार जातियों की उत्पत्ति हुई है। इनमें ऊँच–नीच एवं गैर बराबरी बढ़ गई है।

अतीत में जो समाज ज्ञान, विज्ञान, आध्यात्म, साहित्य, कला, कौशल, समृद्धि तथा शौर्य के लिये विश्व पुरोधा था, कालांतर में इसका पराभाव और पतन क्यों हुआ ? इस सवाल की गहराई में जाने से प्रतीत होता है कि भारत की सामाजिक ढ़ांचे में जाति व्यवस्था की जड़ता के कारण हजारों वर्ष तक

योग्यता को छोटे समूह लगभग 20 प्रतिशत में छेंककर रखा गया। देश की लगभग 80 प्रतिशत आबादी को हर तरह से अधिकार विहीन और ज्ञान अर्जन तथा विवेक प्रदर्शन से प्रतिबंधित रखा। दुर्भाग्यवश जिन समूह को योग्यता हासिल करने का अपार अवसर मिला उन्होनें अपनी योग्यता सिर्फ स्वार्थ साधन में लगाया। द्विजों ने योग्यता के क्षेत्र में नया कीर्तिमान हासिल कर समाज को आगे बढाने के बजाय अधिकार विहीन शूद्रो को ज्ञान के घने अंधकार और अमानवीय शोषण के वातावरण में रखना ही अपनी योग्यता की उपलब्धि मानी। नतीजतन न केवल वे जिन्हें योग्य होने से वंचित रखा गया। बल्कि वह समूह भी जिन्होनें योग्यता हासिल करने का एकाधिकार हासिल किया, वास्तव में अयोग्य बनता गया। इन वजहों से भारत में नये ज्ञान–विज्ञान का विकास संभव नही हुआ। विश्व में हो रही प्रगति से बेखबर रहकर भारत अज्ञानता, अंधविश्वास तथा गरीबी के अंधकार में डूबा रहा। जाति व्यवस्था के चक्रव्यूह में भारत वासियों में सहयोग की भावना को कुंठित कर दिया। देश को निकम्मा बना दिया। विदेशी आक्रमण का मुकबला करने के दौरान यह स्पष्ट रुप से सामने आया हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत दुनिया के दूसरे देशों की तुलना में अधिक दिनों तक विदेशियों की गुलामी की जंजीर में जकड़ा रहा। लगभग एक हजार वर्षो से अधिक समय तक भारत विदेशियों की गुलामी का दंश झेला। जाति व्यवस्था ने इसकी क्षमता को इतना पंगु कर दिया था कि यह विदेशी हमलावारों से सदा ही अपमानजनक ढंग से पराजित होता रहा। जिन उच्च जातियों ने अपने स्वार्थ की वजह से अन्त्यजों, आदिवासियों और शूद्रों को केवल शारीरिक श्रम करने वाला दरिद्र तिरस्कृत बनाकर रखा, विदेशियों के प्रहार को अकेले झेल नही पाया। जिनके कारण न केवल देश की दौलत लूटी गयी बल्कि अपमान एवं शोषण को भी बर्दाश्त करना पड़ा । विदेशियों से जो अपमानजनक अनुभव भारत को प्राप्त हुआ, वह शायद ही किसी दूसरे देश को हुआ होगा। इतिहास में इन अपमानजनक पराजयों के अनेको उदाहरण पाये जाते है। इसका क्या उत्तर हो सकता है कि क्यों विदेशी हमलावर इस देश में विजय होते रहे और भारत को हर बड़ी लड़ाई में हार के सिवा कभी भी विजय श्री हासिल नही हुई। इसका मूल कारण जाति व्यवस्था है। भारत के अधिसंख्यक जातियों, लगभग 80 प्रतिशत लोगो के मन में

उदासी के कारण युद्धभूमि में लगातार पराजित होती रही है। वरना यहाँ के खेतों–खलिहानों में काम करने वाले कामकार, ईट और पत्थरों से विदेशी हमलावारों की टुकड़ियों को मार कर ढ़ेर कर सकते थे। लेकिन वे उदासीन थे। उन्हें उपेक्षित एवं अलग थलग रखकर उनका शोषण कर शक्तिहीन कर दिया गया था। लड़ाई की हार और जीत से उनके जीवन में कोई परिवर्तन नही होने वाला था। यदि यहाँ की उपेक्षित एवं शोषित जातियों में सामाजिक सम्मान के सुख का अनुभव होता तो वे इन हमलावारों से देश को बचानें की तमन्ना मन में संजोते।

भारत की वर्तमान सामाजिक व्यवस्था लगभग 5 हजार सालों से चल रही है। कुल मिलाकर भारतीय सामाजिक व्यवस्था न केवल विश्व की सबसे पुरानी संस्था है, बल्कि यह सबसे अधिक टिकाऊ भी है। विश्व के सभी देशो में कायम सामाजिक व्यवस्था में असमानता पायी जाती है परन्तु सिर्फ भारतीय हिन्दु व्यवस्था में यह अनोखापन है, जिसमें अपने ही समाज के सबसे अधिक मेहनती वर्ग को अछूत बनाकर सारे मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया। इस लम्बी कालावधि में राज्य बदले, सामाजिक परिवर्तन हुए, आर्थिक बदलाव आयें, सभ्यताओं का उतार चढ़ाव भी हुआ, परन्तु जाति व्यवस्था निर्बाद्ध रुप से चलती रही है। इससे यह सत्यापित होता है कि इस व्यवस्था में असीम क्षमता है। भारतीय जाति व्यवस्था की एक विलक्षण विशेषता है, कि यह काफी सुगमता से विपदा अथवा परिवर्तित परिस्थितियों के साथ पटरी बैठा लेती है। अन्यथा इस लम्बी अवधि में यह जिन्दा नही रह पाती। भारतीय जाति व्यवस्था का इतिहास इस बात का गवाह है कि इसने ऐसे अनेको बार बाहर सें आये हुये समूहो को अपने अंदर समाहित किया, जो स्थायी रुप से इसके सम्पर्क में आयें। विदेशी आक्रमण, संस्कृति तथा बिद्रोही अभियानों का मुकाबला करने की असीम क्षमता ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था को अभी तक कामयाब रखा है। जिस व्यवस्था में बुद्ध के प्रहार को झेलने की क्षमता है, जिसे अनेको विदेशी आक्रमणों ने कुछ नही बिगाड़ पाया। ब्रिटिश विदेशी शासन और संस्कृति को आत्मसात कर लिया और जो गाँधी, अम्बेडकर आदि अनेक संतो व मनीषियों के आन्दोलनों को सफलतापूर्वक मुकाबला करने में सफल हुआ हो, उससे निर्णायक संघर्ष करना आसान नहीं है।

जब तक इस पर चौतरफा प्रहार नहीं होगा, इसके विनाशकारी करतूतों को नहीं रोका जा सकता है। व्यक्ति के दमित व कुचले स्वाभिमान को फिर से स्थापित करना ही जाति व्यवस्था से सफल टकराव की कसौटी है।

भारत में जाति व्यवस्था के पिछले अमुमन पाँच हजार वर्ष के काल को मोटे तौर पर चार चरणों में विभाजित कर अवलोकन किया जा सकता है। प्रथम चरण में 1919 के पहले वाली सभी अवधि को रखा जा सकता है। इस लम्बी अवधि में व्यक्ति को जाति प्रथा को मानने एवं धर्म का पालन करने के अलावा कोई अन्य रास्ता नही था। अपने जाति धर्म को बिना शिकवा शिकायत के पालन करना ही दुखी जीवन से छुटकारा पाने का एक मात्र रास्ता था। दूसरा चरण 1919 के बाद आता है। इस अवधि में जब भारत सरकार ने ब्रिटिश साम्राज्य के तहत स्वशासित संस्थाओं की स्थापना के उद्देश्य से एक बिल पास किया। इस बिल के अन्तर्गत निचली जातियों के लागों को सीमित राजनीतिक अधिकार मिले और भारतीय नागरिक होने का अहसास जाग्रत हुआ। यहाँ से दलितों में नयी चेतना का उदय हुआ। दलितों को यह अहसास हुआ है, कि जीवन में खुशहाली के लिये जाति धर्म का पालन करना आवश्यक नही है, बल्कि यह सत्ता व्यवस्था के द्वारा भी आ सकती है। तीसरा चरण 1960 के दशक एवं उसके बाद का है। इस चरण में दलितों को यह महसूस हुआ कि जाति धर्म के पालन किए बिना सत्ता व्यवस्था में रियासते प्राप्त कर जीवन की बदहाली व यातानाओं से मुक्ति मिल सकती है। इस कड़ी में 1993 ई॰ में सम्पूर्ण देश में पंचायत राज व्यवस्था का लागू होना भी दलितों के इस अहसास को मजबूती एवं तरलता प्रदान किया है। चौथा चरण 1991 ई. में नई आर्थिक नीति के तहत उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया का श्रीगणेश हुआ, को माना जा सकता है। इस नीति के अन्तर्गत खुलापन की प्रक्रिया अपनायी गयी। अनेकानेक अवरोधों एवं प्रतिबन्धों को समाप्त कर सेवा एवं वस्तुओं के स्वतंत्र प्रवाह की प्रक्रिया को अपनायी गयी। औद्योगिकरण एवं व्यापारिकरण को बढ़ावा मिला। परम्परागत तकनीक एवं मान्यता की जगह आधुनिक तकनीक एवं मान्यता का धड़ड्ले से प्रयोग होने लगे है। परम्परागत व्यवसाय के अतिरिक्त अनेक आधुनिक नये व्यवसाय या क्रियाकलाप का सृजन हुआ। जिसमें जातिगत बन्धन का कोई

गुंजाईश नही रही है। सम्पूर्ण वैश्विक समाज का आपस में मेल–मिलाप एवं सम्बद्धता में बढ़ोत्तरी हुई। इन सबका मिश्रित प्रभाव यह हुआ है कि जाति प्रथा की तीव्रता में कमी आयी है। आज व्यक्ति जाति से बाहर निकल कर व्यवसाय एवं कार्य का चयन स्वतंत्रता पूर्वक क्षमतानुसार करने लगे है। आगे जाति व्यवस्था किस करवट लेगी यह तो भविष्य ही तय करेगा।

भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का एक परम लक्ष्य था कि आजादी के बाद पुरानी सामाजिक व्यवस्था बदलकर, यहाँ एक समतामूलक समाज की स्थापना की जायेगी। इसलिये देश का लोकतांत्रिक राजनीतिक ढ़ाँचा तथा नियोजित आर्थिक विकास का रास्ता अख्तियार किया गया। समतामूलक समाज की संरचना के लिये एक ओर संवैधानिक और वैधानिक पहल की गयी और दूसरी ओर भुखमरी, दरिद्रता एवं बेकारी से लड़ने के लिये योजनाबद्ध नीति से सामाजिक – आर्थिक विकास समबन्धी कार्यक्रम प्रारंभ किये गये। भारतीय संविधान में जातिविहीन समतामूलक समाज की स्थापना हेतु कई प्रावधानों को समाहित किया गया। संविधान की प्रस्तावना में यह सुस्पष्ट किया गया कि संविधान का मूल उद्देश्य अपने सभी नागरिकों के लिये सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक न्याय तथा प्रतिष्ठा व अवसर की समानता और विचार अभिव्यक्ति, विश्वास व उपासना की स्वतंत्रता एवं व्यक्ति की गरिमा व राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता का विकास करना है। यहाँ ध्यातब्य है कि संविधान की प्रस्तावना में न्याय की व्याख्या करते समय सामाजिक एवं आर्थिक न्याय को राजनीतिक न्याय की तुलना में वरीयता प्रदान की गयी है। यह इस लिये किया गया है। राजनीतिक न्याय (अर्थात प्रत्येक नागरिक को मतदाता के रुप में पंजीकृत होने एवं मत देने का समान अधिकार) का कोई औचित्य नही है। जब तक कि समाज में नागरिकों को सामाजिक–आर्थिक न्याय प्राप्त नही होता।

संविधान में लोगों के अधिकार सुरक्षित करने के लिये संविधान के भाग–3 में मौलिक अधिकार के अन्तर्गत अनच्छेद 14 से 18 तक समानता का अधिकार प्रदान किया गया। इसके अन्तर्गत अनुच्छेद 14 में विधि के समक्ष समानता, अनुच्छेद 15 में जाति, धर्म, वंश, लिंग तथा जन्म स्थान के आधार पर

भेदभाव का प्रति ाोध, अनुच्छेद 16 में रोजगार के अवसरों में समानता, अनुच्छेद 17 में छुआछूत का उन्मूलन और अनुच्छेद 18 में विशेषाधिकारों की समाप्ति का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 29(2) राज्य निधि से सहायता प्राप्त किसी शिक्षण संस्था में प्रवेश पाने से किसी भी नागरिक को धर्म, वंश, जाति, भाषा इत्यादि के आधार पर वंचित नहीं किये जाने की व्यवस्था करता है। अनुच्छेद 325 एवं 326 में सभी नागरिको को समान राजनीतिक अधिकार प्रदान किये गये।

नागरिकों को अनुच्छेद 19 से 22 तक प्रदत्त स्वतंत्रता के अधिकार, के अन्तर्गत अनुच्छेद 19 में विचारों व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संघ व सम्मेलन की स्वतंत्रता, भारत में कहीं बसने व भ्रमण की स्वतंत्रता, व्यावसायिक स्वतंत्रता तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता जैसे व्यवसाय, व्यापार आदि। इसके अतिरिक्त नागरिको को कुछ अन्य अधिकार भी प्रदान किये गये है। यथा अनुच्छेद 20 में अपराध सिद्ध न होने तक किसी व्यक्ति को अपराधी नही माना जा सकता है। अनुच्छेद 21 में व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा जीवन सुरक्षा की व्यवस्था की गई है। अनुच्छेद 22 में किसी व्यक्ति को वन्दी करने की स्थिति में संरक्षण की व्यवस्था की गई है। स्वतंत्रता के इन अधिकारों के साथ–साथ अनुच्छेद 25 से 28 में धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 25 में धार्मिक संगठन की स्वतंत्रता, अनुच्छेद 26 में इच्छानुकूल उपासना की स्वतंत्रता, अनुच्छेद 27 में धार्मिक संस्थानों की सदस्यता की स्वतंत्रता तथा अनुच्छेद 28 में राज्य की धार्मिक क्षेत्र में तटस्थता प्रदान कि गई है।

अनुच्छेद 23 एवं 24 में प्रदत्त शोषण के विरुद्ध अधिकार के तहत अनुच्छेद 23(1) के द्वारा बेगार या बलात श्रम कराना निषिद्ध किया गया। अनुच्छेद 23(2) में मनुष्यों के क्रय–विक्रय पर रोक लगाया गया है। अनुच्छेद 24 के माध्यम से 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को संकटपूर्ण कार्य में लगाने से प्रतिबंधित कर दिया गया।

संविधान के भाग–4 में उल्लिखित नीति निर्देशक सिद्धान्तों के द्वारा राज्य को निर्देशित किया गया है कि वह सभी नागरिको को सामाजिक–आर्थिक न्याय प्रदान करने के लिये आवश्यक वैधानिक एवं प्रशासकीय पहल करे। साथ

ही समाज के कमजोर वर्गो विशेष रुप से श्रमिकों, बच्चों, वृद्धों एवं शारीरिक रुप से अशक्त लोगो के लिये सामाजिक सुरक्षा व कल्याणकारी कार्यक्रमों को लागू करेगा।

संविधान के अनुच्छेद 38 में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय की स्थापना और आय की असमानताओं को कम करने की व्यवस्था हेतु राज्य को निर्देशित किया गया है। अनुच्छेद 39 के द्वारा राज्य यह प्रयास करेगा कि वह नागरिको को जीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराये तथा उत्पादन के साधनों का सर्वसाधारण के अहितकारी संकेन्द्रण को रोकने एवं सामूहिक हित के सर्वोत्तम उपयोग की दृष्टि से संसाधनों के स्वामित्व व नियंत्रण को नियमित करे। अनुच्छेद 41 के तहत राज्य अपनी आर्थिक क्षमता व सीमा के अनुरुप यह प्रयत्न करेगा कि सभी नागरिक अपनी योग्यता के अनुसार रोजगार एवं शिक्षा प्राप्त कर सके और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी आदि की दशा में सार्वजनिक सहायता प्राप्त कर सके। अनुच्छेद 42 कार्य की उपर्युक्त मानवोचित दशा तथा मातृत्व हित सुनिश्चत करने से सम्बन्धित है। अनुच्छेद 43 के अन्तर्गत राज्य श्रमिकों के कार्य की समुचित दशायें उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा। अनुच्छेद 45 के तहत राज्य बालकों के लिये निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रबंध करेगा। अनुच्छेद 46 में कमजोर वर्गो के हितों की अभिवृद्धि के संदर्भ में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसके तहत राज्य समाज के कमजोर वर्गो के शिक्षा व आर्थिक हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा तथा सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा कर सामाजिक न्याय व समतामूलक समाज की स्थापना का प्रयास करेगा।

यद्यपि अनुच्छेद 15 में नागरिकों के बीच सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त कर दिया गया है तथापि अनुच्छेद 15 (3) के अन्तर्गत महिलाओं एवं बालको के हितो के सम्बर्धन के लिये राज्य विशेष उपबन्ध कर सकता है। 1951 में संविधान में प्रथम संशोधन द्वारा जोड़ी गयी अनुच्छेद 15(4) में यह व्यवस्था किया गया कि राज्य सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों या अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के उत्थान के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है। इसमें अनुच्छेद 29(2) में उल्लिखित समानता के उपबन्ध बाधक नही होगा। अनुच्छेद 16(1) में रोजगार के अवसर में समानता तथा

अनुच्छेद 16(2) में इस संबंध में किसी प्रकार के भेदभाव का निषेध किया गया है। फिर भी अनुच्छेद 16(4) में यह प्रावधान किया गया कि यदि राज्य यह महसूस करता है,कि राज्य की सेवाओं में समाज के कमजोर वर्गो का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो राज्य इन वर्गो के लिए नियुक्तियों या पदो के आरक्षण के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है।

अनुच्छेद 330 एवं 332 के तहत विधान मण्डलों (लोक सभा व विधानसभा) में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए स्थान आरक्षित किये गये है। इसी तरह पंचायती राज के विभिन्न स्तरों में महिला सहित कमजोर जातियों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक प्रावधान किये गये है। अनुच्छेद 338 के अन्तर्गत अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की समस्याओं का अध्ययन करने एवं उनकी दशा सुधारने हेतु आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करने के लिए एक आयोग का गठन किया गया तथा अनुच्छेद 340 के अन्तर्गत सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से अन्य पिछड़े वर्गो की समस्याओं के अध्ययन करने एवं उत्थान हेतु आवश्यक सुझाव प्रदान करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा एक पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन किया गया। काका कालेलकर की अध्यक्षता वाली प्रथम पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन 1955 में किया गया। पुनः वी॰पी॰ मण्डल की अध्यक्षता वाली गठित द्वितीय पिछडा वर्ग आयोग (1978–80) की अनुसंशा के मद्देजर केन्द्र और राज्य की सरकारी सेवाओं में पिछडे वर्गो को लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया ।

भारतीय समाज में सदियों से व्याप्त सामाजिक विषमता को समाप्त कर जातिविहीन समतामूलक समाज की स्थापना के लिये अनेक संतो, मनीषियों, समाज सुधारकों, प्रबुद्धजनों इत्यादि द्वारा प्रयास किया जाता रहा है। भक्ति काल में संतों ने हिन्दू समाज में व्याप्त जात–पात, ऊँच–नीच तथा छुआछूत का विरोध करते हुये समाज की आंतरिक विसंगतियों को उजागर किया। किन्तु उनका विरोध नैतिक धरातल तक ही सीमित था। राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानन्द, महात्मा ज्योतिबा फुले, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, डॉ॰ बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर इत्यादि ने समाज में रचनात्मक सुधार एवं समतामूलक समाज स्थापित करने की दिशा में अमूल्य योगदान दिये। डॉ अम्बेडकर का

मानना है कि 19वीं सदी के धार्मिक–सामाजिक सुधारकों ने केवल सतही स्तर पर सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में सुधार लाने का प्रयास किया। उन्होने सभी बुराईयों की जड़ जाति व्यवस्था पर जमकर प्रहार नहीं किया, जो समाज को भीतर से खोखला कर रही है।

डॉ॰ अम्बेडकर एक चिन्तक, समाज सुधारक और संविधानविद् मात्र ही नही थे, बल्कि एक युग के प्रणेता थे। भारतीय परम्परागत समाज की मान्यताओं सम्बन्धी उनकी समझ, शास्त्रों की आलोचनात्मक परीक्षण करते हुए वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने के आधार बनी थी ।

डॉ॰ अम्बेडकर ने भारतीय जाति व्यवस्था को हिन्दू समाज का सबसे बडा घातक अभिशाप माना। इन्होंने जाति व्यवस्था को सामाजिक एकता एवं समरसता में बाधक बताया । जाति व्यवस्था में उनकी सैद्धान्तिक रूचि और उनकी वैयक्तिक विषमताओं ने उन्हे भारतीय सामाजिक संरचना मे जाति व्यवस्था की भूमिका पर चिन्तन करने के लिये प्रेरित किया। जाति व्यवस्था पर उनके विचार मुख्य रूप से उनके शोध आलेख ''कास्ट्स इन इण्डिया देअर मेकेनिज्म, जेनिसिस एण्ड डेवलपमेण्ट'' से प्राप्त होते हैं। यह शोध आलेख 1916 ई॰ मे उनके द्वारा कोलम्बिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) में प्रस्तुत किया गया था।

डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर जीवन पर्यन्त जाति व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष करते रहे। उनका मानना था कि जाति व्यवस्था के चलते ही भारत पराभाव व पतन को प्राप्त हुआ। जाति और जाति व्यवस्था हिन्दु समाज का सबसे खतरनाक लक्षण है। यदि भारत एक जातिविहीन समतामूलक समाज नहीं बनता है, तो वह अपनी रक्षा नहीं कर पायेगा। जाति व्यवस्था के दुष्प्रभाव को रोकने के लिए उन धार्मिक आधारो को ध्वस्त करना होगा जिन पर यह आधारित है। संविधान एवं हिन्दू कोड बिल की रचना के माध्यम से स्वतंत्र भारत में डॉ॰ अम्बेडकर ने जातिविहीन समतामूलक समाज की रचना का मार्ग प्रशस्त किया।

डॉ॰ अम्बेडकर का समाजिक चिन्तन भारतीय समाज मे व्याप्त दमन, शोषण व अन्याय के विविध स्वरूपों और उसके कारकों की खोज एवं परीक्षण से

आरम्भ होकर समतामूलक आदर्श समाज निर्माण के मूलभूत सिद्धान्तों निर्धारण की ओर अग्रसर होता हैं। उनके चिन्तन एवं घटनामय कृतित्व के विकास क्रम को तीन चरणो मे बाँट कर देखा जा सकता है।

प्रथम चरण (1915 से 1945 की अवधि) में भारतीय सामाजिक व्यवस्था एव सामाजिक सम्बन्धो के विविध स्वरूपों का निर्धारण करने वाली सामाजिक अवधारणाओं, संहिताओं, शास्त्रों, खास तौर से मनु स्मृति, जिसे हिन्दु दैवीय विधान मानते है, का समालोचनात्मक परीक्षण एवं गहन अध्ययन किया। हिन्दु धर्म पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को सुधारने की मुहिम चलायी। इस अवधि में ''कास्ट्स इन इण्डिया'', ''हू वेयर द शूद्राज'', ''द अनटचेबुल्स'' तथा एनिहिलेशन ऑफ कास्ट'' जैसे सामाजिक ग्रन्थों की रचना की।

द्वितीय चरण (1946 से 1950 की अवधि) में न्यायपूर्ण नियमों, सामाजिक मान्यताओं को संहिताबद्ध कर न्यायपूर्ण समतामूलक समाज की स्थापना का प्रयास किया। तथाकथित अछूत जातियों के लिए एक स्वायत्त राजनीतिक दायरा विकसित करने का मार्ग प्रशस्त किया। इस अवधि में उन्होने ''स्टेट एण्ड माइनारिटीज'' ''कान्स्टीच्यूशन ऑफ इण्डिया'' तथा हिन्दू कोड बिल'' का प्रतिपादन किया।

तृतीय चरण (1951 से 1956 की अवधि) में जीवन के अपने इस अन्तिम परिपक्व अवधि में उन्होने धर्म दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों की स्थापना की । विश्व के प्रमुख धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन कर पाखण्ड व आडम्बर रहित वास्तविक धर्म के मानकों का निर्धारण तथा बौद्ध धर्म के आधारभूत सिद्धातों की समीक्षा कर बौद्ध धर्म को वास्तविक धर्म के मानकों पर सर्वाधिक सत्यापित पाया। यही कारण है कि अपने खोजपूर्ण एवं संघर्षपूर्ण जीवन की अन्तिम पड़ाव में उन्होने बौद्ध धर्म अपनाने पर बल दिया। उन्होने रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना करते हुए राजनीतिक गतिविधियों का चरित्र बदलने का प्रयास किया।

प्राचीन समाज एवं अम्बेडकर का आदर्श समाज

डॉ॰अम्बेडकर परम्परागत अन्यायपूर्ण एवं भेदभावपूर्ण समाज पर करारा प्रहार कर एक न्यायपूर्ण एवं भेदभाव रहित समतामूलक आदर्श समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। अम्बेडकर का आदर्श समाज स्वतंत्रता , समानता एवं बन्धुता पर आधारित, वास्तविक धर्म की कसौटियों पर सत्यापित न्यायोचित सामाजिक व्यवस्था है। अम्बेडकर एक ऐसे आदर्श समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें व्यक्ति और समाज के हितों में कार्यकारी संतुलन हो। वस्तुतः अम्बेडकर की सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक, लोकतंत्र है।

स्वतंत्रता किसी व्यक्ति एवं समाज के सर्वोतोन्मुखी विकास के लिए परमावश्यक है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था या परम्परागत हिन्दू समाज मे स्वतंत्रता का नितांत आभाव है। स्वतंत्रता की एक आवश्यक दशा समानता है। यदि नागरिकों के अधिकारो एवं सुविधाओं में समानता होती है। तो वे जीवन में स्वतंत्रता का प्रभावी ढ़ंग से उपभोग कर पाते है। हिन्दू समाज में वर्ण एवं जातियों के अधिकारों, सुविधाओं एवं समाजिक स्थितियों में अपरिवर्तनीय असमानता है। इस लिए उनमें स्वतंत्रता का भी आभाव है। स्वतंत्रता की एक आवश्यक दशा आर्थिक सुरक्षा का भी परम्परागत हिन्दू समाज में आभाव है। शूद्र को निजी सम्पत्ति संग्रह करने के अधिकार से वंचित किया गया है। प्राचीन समाज में शूद्रों व अन्त्यजों को शिक्षा प्राप्त करने एवं धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ने से वंचित किया गया और ऐसा करने पर उनको अपराधी मान कर उनके लिए दण्ड का विधान था। इस प्रकार प्राचीन हिन्दू समाज में शूद्र वर्ण के लिए स्वतंत्रता नहीं था।

डॉ॰ अम्बेडकर का आदर्श समाज स्वतंत्रता पर आधारित है। वे वर्ण एवं जातिगत असमानता को नही मानते थे। डॉ॰ अम्बेडकर अपने आदर्श समाजिक व्यवस्था में निजी सम्पत्ति के अधिकार तथा व्यक्तिगत स्वनिर्धारण को मानवीय जीवन का आवश्यक अंग मानते थे। उनका विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमतानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। इससे व्यक्ति की सामाजिक क्षमता बढती है और वह सुखी रह सकता है। उन्होंने एक आदर्श

सामाजिक संरचना में राजनीतिक दलों की स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता, नैतिक स्वतंत्रता को आवश्यक बताया है।

प्राचीन हिन्दू समाज समानता नही असमानता पर आधारित है। समानता का तात्पर्य भेदभाव की अनुपस्थिति से है जो परम्परागत हिन्दू समाज में नही है। इस समाज में वर्णों एवं जातियों के अधिकारों एवं सुविधाओं में स्पष्ट अन्तर है। ब्राम्हणों को विशेष सुविधा प्रदान की गई है। जबकि प्राचीन सामाजिक सोपान में शूद्रों पर अनेक तरह के प्रतिबन्ध थे। चतुवर्ण से बाहर होने के कारण इस विधान में अन्त्यजों की स्थिति दासों से भी बदतर थी।

डॉ॰ अम्बेडकर के आदर्श समाज में समानता के सिद्धान्त के अनुसार जहाँ तक समान गुणों का सम्बन्ध है, सभी व्यक्तियों को समान सुविधाएं एवं अवसर दिये जाने एवं सैद्धान्तिक तौर पर उन्हे समान सम्मान की वकालत की गयी है। वे व्यवहारिक रूप से समता के भाव को प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का महत्वपूर्ण अंग मानते थे। उन्होंने समानता को व्यक्तिवाद, उदारवाद समाजवाद तथा साम्यवाद से अलग एक मानवीय आधार पर स्थापित करना चाहते थे ताकि प्रत्येक व्यक्ति के लिए न्याय एवं सुरक्षा प्रदान की जा सके। अतः समानता आदर्श समाज का एक प्रमुख आधार है। वे प्राथमिकताओं की समानता, सुविधाओं की समानता तथा अवसर की समानता के विशेष पक्षधर थे। जिससे साधनहीन व्यक्ति भी विकास के पथ पर अग्रसर हो सके। समानता के सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति को विधि के समक्ष समान मानता है। अम्बेडकर का मानना हे कि हिन्दू समाज में सामाजिक असमानता के साथ ही धार्मिक असमानता का भी कानून था। ऐसा उन्होने समाज में ब्राम्हणों सहित उच्च वर्णो की श्रेष्ठता को बनाये रखने के मानस से किया। क्योंकि यदि धार्मिक समानता को स्वीकार किया जाता तो वर्णीय असमानता स्वतः समाप्त हो जाती। ऐसी स्थिति में ईश्वर के सम्मुख एक चाण्डाल एक ब्राम्हणों के समान होता, तो पृथ्वी पर उसे ब्राम्हणों के समान होने से कोई नही रोक सकता था।

प्राचीन हिन्दू समाज में बन्धुता का आभाव है। क्योंकि सामाजिक व्यवस्था वर्ण और जाति में विभक्त है। उनमें ऊँच–नीच, छुआछुत की भी भावना पायी जाती है। खान–पान तथा शादी विवाह अपनी ही जाति में होता है। यही कारण है कि

उनमें परस्पर प्रतिद्वन्दिता तथा घृणा की भावना भी बनी रहती है। एक जाति दूसरी जाति के सुख–दुख को नही समझती है। आपसी खींचतान एवं घृणा के कारण हिन्दू समाज में बन्धुता, एकता एवं सामंजस्य के भाव का विकास नही हो पाया ।

डॉ॰ अम्बेडकर के आदर्श समाजिक व्यवस्था वर्ण एवं जाति पर आधारित नही है। ऊँच–नीच, छुआछूत की भावना का सर्वथा आभाव है। उनके अनुसार बन्धुता का सिद्धान्त सामाजिक है न कि ईश्वरवादी है। उनके विचार से एक आदर्श समाज में सभी व्यक्तियों के विचार मूलतः बनधुता युक्त हो, उनमें यह चेतना होनी चाहिए की वे सब एक है आपस में भाई–चारा होना चाहिए, उनमें ऐच्छिक रूप से उठने बैठने व मिलने–जुलने की स्वतंत्रता एवं समानता हो। समाज के सभी व्यक्तियों में सामाजिक समस्याओं को साथ–साथ मिल–जुल कर समाधान की उचित सम्भावित व्यवस्था होनी चाहिए ।

डॉ॰ अम्बेडकर के मतानुसार आदर्श समाज स्वतंत्रता, समानता और बन्धुता पर आधारित होनी चाहिए । उनका यह दृढ़ विश्वास है कि यदि हम सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में लोकतत्रं की स्थापना नही कर पाते हैं, तो राजनीतिक जीवन में लोकतंत्र अधिक दिनों तक नहीं टिका रह सकता है। उनके अनुसार व्यक्तियों में समानता केवल राजनैतिक समानता से सार्थक नहीं बनायी जा सकती। जब तक कि सामाजिक तथा आर्थिक समानता की स्थापना नही हो जाती, तब तक समानता अधूरी है।

अतः डॉ॰ अम्बेडकर की भविष्यवाणी जो संविधान सभा के समापन पर किया था, सही होता दिखायी दे रही है ''26 जनवरी 1950 को हम लोग जीवन के एक विरोधाभाषी परिस्थिति में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीतिक जीवन में तो समानता प्राप्त हो जाएगी, राजनीति के क्षेत्र में तो हम एक व्यक्ति, एक वोट, एक मूल्य के सिद्धान्त का सुख अनुभव करने जा रहे है। परन्तु सामाजिक और आर्थिक विषमता बनी रहेगी। कब तक हम लोग इस विरोधाभाष वाली जिन्दगी के साथ जीयेंगे। कब तक सामाजिक और आर्थिक समानता की अवहेलना करते रहेंगे यदि इसे लम्बे समय तक नजर अन्दाज किया गया तो हम

लोग राजनीतिक लोकतंत्र को खतरे में डालेंगे । हम लोग जल्द से जल्द इस विरोधाभाष को निपटा ले वरना असमानता के शिकार लोग संविधान सभा द्वारा इतनी मेहनत से तैयार किये गये प्रजातंत्र के ढ़ाँचे को ढ़ाह देंगें।''

प्राचीन समाज में धार्मिक आडम्बर, शास्त्रीय परम्परा तथा नियम को महत्व दिया जाता है। हिन्दू धर्म नियमों और परम्पराओं का समूह है। इसका व्यक्ति को नैतिक बनाने से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए ऐसे समाज में असमता एवं अन्याय का अहसास तथा इसके विरूद्ध विद्रोह की संभावना कम होती है। जबकि अम्बेडकर के आदर्श समाज में सामाजिक दायित्व एवं युक्ति संगतता पर बल दिया गया है। जिससे इस सामाजिक व्यवस्था में अन्याय का बोध एवं अन्याय के विरूद्ध संघर्ष की संभावना अधिक है। इसमें व्यक्ति के नैतिक विकास की संभावना प्रबल है।

प्राचीन समाज का गठन वर्ण या जाति के संरक्षण पर आधारित है। इस सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति नहीं बल्कि वर्ण या जाति को महत्व दिया जाता है। जबकि डॉ. अम्बेडकर का मत है कि व्यक्ति के हितो की उपेक्षा करके कोई व्यवस्था प्रगतिशील एवं सुदृढ़ नहीं हो सकता है। व्यक्ति समाज का दास नही है बल्कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक सम्बन्धों का निर्माणकर्ता होता है। वह इतिहास की रचना करता है। व्यक्ति का समाज में स्वतंत्र अस्तित्व एवं अपनी एक पहचान होती है। इसलिए समाज, राज्य, अर्थतंत्र, धर्म इत्यादि का उद्देश्य व्यक्ति के विकास के लिए अनुकूल वातावरण का सृजन करना होना चाहिए । इस बात को ध्यान में रखते हुए डॉ॰ अम्बेडकर ने संविधान में मौलिक अधिकारों एवं नीति निर्देशक तत्वों का प्रावधान किया ।

प्राचीन समाज में व्यक्ति की महत्ता एवं उपयोगिता अपने वर्ग के लिए निर्धारित कार्यो को सम्पन्न करना तथा दूसरे वर्गो के कार्यो में हस्तक्षेप नहीं करना है। कुल मिलाकर समाज में व्यक्ति का दायित्व सम्पूर्ण व्यवस्था को बनाये रखने में अपने वर्गीय दायित्व का निर्वहंन करना है। जबकि अम्बेडकर के आदर्श समाज में व्यक्ति पर वर्गीय दायित्व नही थोपा जाता है। व्यक्ति अपनी क्षमतानुसार व्यवसाय का चयन करता है। इस मे समाज ऐसा हो जो व्यक्ति के आत्मविकास के अवसर प्रदान कर उसे अपने दायित्वों के निर्वहन करने योग्य बनाता है।

प्राचीन समाज में गुणवत्ता वर्गीय विषय माना जाता है। माना जाता था कि महान पुरूष महान व्यक्ति के घर जन्म लेते है। वीर–वीर के घर, शासक–शासक के घर इसी प्रकार सेवक–सेवक के घर में पैदा होता है। जबकि डॉ॰ अम्बेडकर का मानना है, कि गुणवत्ता व्यक्तिगत विषय है वर्गीय नहीं। प्राचीन समाज की वर्गीय गुणवत्ता की धारणा से स्वतंत्रता एवं समानता के सिद्धान्त का उल्लघंन होता है।

प्राचीन समाज में जातिवादियों का मानना है, कि जाति व्यवस्था द्वारा श्रम का विभाजन किया जाता हैं। यह एक प्रकार्यात्मक विभाजन है जो समाज के लिए अति आवश्यक है। जबकि अम्बेडकर की धारणा है कि यह श्रम का नहीं वरन श्रमिक का पद–सोपानिक विभाजन है। इसके अतिरिक्त यह व्यक्तियों को उनकी क्षमता के अनुसार नहीं, वरन उनके जन्म और परिवार की स्थिति के आधार पर कार्य का आवंटन करता है।

प्राचीन समाज में जातिवादियों की धारणा है, कि जाति व्यवस्था का आधार जैविक (वॉयोलॉजिकल) है। उनका मानना है कि जाति पर आधारित व्यवस्था में प्रजातीय शुद्धता (प्योरिटी ऑफ रेस) पायी जती है। जाति रक्तीय शुद्धता और प्रजातीय शुद्धता सुनिश्चित करती है। जबकि अम्बेडकर का कथन है, कि सामाजिक मानव शास्त्रियों ने पहले ही यह प्रमाणित कर दिया है कि रक्त और प्रजाति की शुद्धता की अवधारणा एक थोंथी दलील मात्र है। अम्बेडकर का यह भी मानना है कि रक्त और प्रजाति के मिश्रण से हानि क्या है? वे यह भी कहते है कि 'हिन्दू' शब्द भी विदेशी उत्पत्ति का है। मुस्लिमों ने इस शब्द का प्रयोग उन व्यक्तियों के लिए किया है जो उनके द्वारा विजित क्षेत्र के निवासी हैं। उन्होंने यह भी कहा कि रक्त व प्रजाति शुद्धता की दुहाई के बावजूद अनेक अवसरों पर हिन्दुओं ने अपनी जाति हित में देश के साथ गद्दारी ही की है।

डॉ॰ अम्बेडकर एक धार्मिक क्रान्ति का शंखनाद करते हैं, जो उनकी दृष्टि में सामाजिक कान्ति की पूर्व–वाहिका है और सामाजिक क्रान्ति राजनीतिक क्रान्ति की पूर्व शर्त है। डॉ॰ अम्बेडकर की धारणा में जाति प्रणाली को नष्ट करना ही धार्मिक क्रान्ति है। क्रान्ति के लिए वे हिंसात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक तरीके

के समर्थक थे। उनका मानना है कि जाति व्यवस्था एक मानसिक समस्या है अतः इसका समाधान भी मानसिक सोच एवं मनोवृत्ति में बदलाव से ही संभव है। प्रश्न है कि इस कान्ति का नेतृत्व कौन करे ? अम्बेडकर का फिर वही उत्तर है कि समाज के सबसे बड़े बौद्धिक वर्ग ब्राम्हण वर्ग को इस कार्य में नेतृत्व प्रदान करना चाहिए।

अम्बेडकर की धारणा है, कि छुआछूत की समस्या की जड़ जाति व्यवस्था में है तथा इसका निराकरण धर्म पर आधारित जाति व्यवस्था को समाप्त करके किया जा सकता है। गॉधी जी इस कार्य को व्यक्ति के ह्रदय में बदलाव लाकर करने की बात करते है। वहीं वामपंथियों ने इसका कारण आर्थिक स्थिति को मानते हैं एवं इसके समाधान के लिए समाजवादी अर्थव्यवस्था को अपनाने की बात करते हैं।

डॉ॰ अम्बेडकर अछूतों के लिए पृथक दायरा विकसित करने के लिए अनेक प्रयोग किए। सन 1919 ई. में साऊथबरों समिति के सामने अछूतों के लिए पृथक निर्वाचक मण्डल (सेपरेट इलेक्टोरेट) की मांग रखी। यह वह समय था जब आधुनिक भारतीय राजनीति में पिछड़ी जातियों के हितों को सुरक्षित करने का श्री गणेश हुआ जो किसी न किसी रूप में आज भी जारी है। सन 1932 ई. में आयोजित द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में अछूतों के लिए प्रथक निर्वाचक मण्डल संबंधी अम्बेडकर की बात को अग्रेजों के मानने के पश्चात गांधी जी ने पूणे की यर्वदा जेल में आमरण अनशन शुरू कर दिया। वे अछूतों के संदर्भ में पृथक निर्वाचक मण्डल हेतु सहमत नहीं थे। उनका मानना था कि इससे हिंदु समुदाय में विभाजन हो जाएगा। गाँधी जी की मृत्यु की आशंका और प्रतिक्रियास्वरूप अछूतों के खिलाफ हिंसा फूट पड़ने के भय से 1932 में पूना पेक्ट के तहत अम्बेडकर ने अपनी मांग वापस कर ली। अगर ऐसा नहीं होता तो भारत का अछूत, मुस्लिम की तरह ही हिंदुओं के साथ रहने को तैयार नहीं होता। खैरियत थी कि अम्बेडकर अछूतों को अलग राजनीतिक इकाई का दर्जा मिलने मात्र से संतुष्ट हो गए थे। हिंदुओं की कट्टरता ने मुसलमानों को पृथक राज्य के सिवा कोई दूसरा प्रस्ताव मंजूर नहीं होने दिया। यदि हिंदु सामाजिक व्यवस्था में समाज

के सभी आम लोगों को मानवीय अधिकार हासिल करने का हक होता तो देश का विभाजन और इसके परिणामस्वरूप तनाव की परेशानी नहीं होती।

डॉ॰ अम्बेडकर ने परम्परागत निर्योग्यताओं के उन्मूलन तथा तदजनित समस्याओं के निराकरण के लिए दलितों को अष्टांग मार्ग (आठ उपायों) को अपनाने का सुझाव दिया। प्रथम, गाँव छोड़कर नगर में बसना। द्वितीय, लौकिक व्यवसाय करना। तृतीय, राजनीतिक इकाई के रूप में संगठित होना। चतुर्थ, संवैधानिक मार्ग का अनुसरण करना। पंचम, स्वावलंबन व स्व–प्रयास पर भरोसा करना। षष्टम, संघर्ष करना। सप्तम, समझौता और सौदेबाजी की राणनीति अपनाना। अष्टम, बुद्ध के मार्ग का अनुगमन करना।

इस प्रकार समाज व्यवस्था में परिवर्तन तथा दलित समस्या के समाधान के प्रश्न पर अम्बेडकर का रूख क्रान्तिकारी था। उन्होंने सामाजिक विषमता का अनुभव किया, उसकी पीडाओं को भोगा और साहस–पूर्वक डट कर उसका सामना किया। उनका मानना था कि लोकतांत्रिक प्रणाली में दलित संवैधानिक सीमा के भीतर राजनीतिक शक्ति प्राप्त करके अपनी समस्याओं का निदान कर सकते हैं। अतः दलितों व शोषितों को शिक्षित बनो, संगठित रहो एवं संघर्ष करो कि लिए आहवान किया।

समीक्षा

जाति व्यवस्था भारतीय समाज की एक हकीकत है। जाति व्यवस्था का तेवर व हाव भाव बदला है लेकिन इसके बुनियादी चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं आया है। जातियों के संगठन में कुछ परिवर्तन तो अवश्य हुए हैं परन्तु जाति व्यवस्था के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक स्वरूप में बदलाव नही आया है। समकालीन भारतीय समाज में नए राजनीतिक और आर्थिक कार्य विधान के तहत इसने भी नई कार्य पद्धति का आविष्कार कर लिया है। नई राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों ने देश में जीवन अवसरों के असमान वितरण को नयी ऊर्जा प्रदान कि है। लेकिन इसी के साथ वर्तमान सामाजिक हकीकत और उससे सम्बन्धित संवैधानिक प्रावधानों के बीच बढती विसंगतियों ने निचली जातियों में बेचैनी पैदा

कि है। नतीजतन समाज में तनाव की दशा पैदा हुई है। इससे राष्ट्रीय व्यवस्था के सुव्यवस्थित संचालन को खतरा महसूस हो रहा है। आधुनिक वैज्ञानिक विकसित समाज के वर्तमान परिदृश्य का अवलोकन से ज्ञात होता है कि समाज में तनाव, खतरा, असमानता तथा असहिष्णुता बढ़ती जा रही है। 14 दिसम्बर 2015 को यू.एन.डी.पी. (संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम) (United Nation Development Programme) } द्वारा जारी की गई ताजा रिपोर्ट से आधुनिक वैज्ञानिक विकसित समाज का परिदृश्य स्पष्ट हो जाता है।

पिछले 24 वर्षो में या जब से (1990 से)यू.एन.डी.पी.मानव विकास सूचकांक (HDI) बनाने लगा है, हम मानव विकास के मामले में वहीं के वहीं खड़े हैं। करेला नीम चढ़ा की तरह जहाँ 2000 में देश के एक प्रतिशत धनाढ़य लोगों के पास देश की कुल सम्पत्ति का 37 प्रतिशत होता था, वह बढ़कर 2014 में 70 प्रतिशत हो गया है। मतलब विकास हुआ तो केवल एक प्रतिशत लोगों का । हालाँकि 1976 में संविधान की प्रस्तावना में 42 वें संशोधन के तहत समाजवादी शब्द भी डाला है। फिर क्यों आज 99 प्रतिशत लोगों के पास 30 प्रतिशत सम्पत्ति है और साल–दर साल धनाढ़यों की सम्पत्ति में इजाफा होता जा रहा है।

आज गरीब–अमीर के बीच बढ़ती असमानता में हम दुनिया के 188 देशों में 150 वें स्थान पर है और यह खाई लगातार बढ़ती जा रही है तो क्या हमारे पुरखों द्वारा खून बहाकर दिलायी गयी आजादी बेमानी नहीं लगेगी ?

आज जी.डी.पी. (सकल घरेलु उत्पाद) (Gross Domistic Product) के मुद्दो पर देखे तो क्यों देश में अगर हम जी.डी.पी. (सकल घरेलु उत्पाद) में दुनिया के शिखर दस देशों में शुमार हैं तो मानव विकास में 185 देशों में पिछले 24 वर्षो में 130 वें या 135 वें स्थान पर क्यों ? अगर तीन साल पहले शुरू किया गया नया पैमाना असमानता–संयोजित मानव विकास सूचकांक देखा जाए तो हम और फिसल कर 151 वें स्थान पर चले जाते हैं।

तीन साल पूर्व (लगभग 2012) प्रारंभ किया गया नया पैमाना (Paramiter) असमानता संयोजित मानव विकास सूचकांक के आधार अमीर–गरीब के बीच कितना अन्तर है, का आकलन किया जाना लगा है। तब पता

चला कि जहाँ सन् 2000 में ऊपरी वर्ग के एक प्रतिशत लोगों की कुल सम्पत्ति ,नीचले वर्ग के 99 प्रतिशत लोगों की कुल सम्पत्ति का 58 गुणा थी, जो 2005 में 75 गुणा, 2010 में 94 गुणा और 2015 में 95 गुणा हो गयी ।

इससे स्पष्ट होता है कि समाज में असमानता की खाई दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। हाल ही में आधुनिक समाज में असहिष्णुता के मामले पर मची बबाल के मामले सामने आये है।

वैसे तो पिछले लगभग 70साल से देश का शासक वर्ग जनता को छलता आ रहा है, गरीबी हटाने, समाजवाद लाने, ऊँच–नीच, गरीब–अमीर के बीच की शाश्वत खाई पाटने के नाम पर पिछले 24 साल से हमें इस धोखे का अहसास होने लगा है जब से 1990 में इस विश्व संगठन (यू.एन.डी.पी.) ने हर साल दुनिया के तमाम मुलको के बारे में यह तथ्य बताना शुरू किया की मानव विकास के पैमाने पर अमुक देश कहाँ है। समस्या है कि किस प्रकार सत्ता व्यवस्था तथा आर्थिक लाभ को समान नागरिकता की स्थिति हासिल करने के लिए उपयोगी बनाया जाय। यह स्पष्ट मालूम पड़ता है, कि भारत को अपने विकास के लिए आर्थिक असमानता के बारे में जागरूक होने की आवश्यकता है। साथ ही सामाजिक ढ़ंग से संतुलित सत्ता व्यवस्था की नई चेतना के निर्माण की भी आवश्यकता है।

अतः जातिविहीन समतामूलक समाज के निर्माण एवं अनेकता में एकता की सुदृढ़ स्थापना हेतु सुव्यवस्थित गुणात्मक शिक्षा व्यवस्था, जागरूक एवं तार्किक जनमत तथा सार्थक सामूहिक सोच की आवश्यकता है और डॉ अम्बेडकर का महामंत्र शिक्षित बनो, संगठित रहो एवं संघर्ष करो को चरितार्थ करना होगा । तभी सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा होगा।

❐

सन्दर्भ –

1. *एम.एम. लनवानिया, एवं जे.पी.पचौरी, ''विकास एवं नियोजन का समाजशास्त्र'', रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 2006।*

2. धर्मवीर महाजन, एवं कमलेश महाजन, ''भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य'', विवेक प्रकाश्न, जवाहर नगर, दिल्ली, 2005।
3. रामगोपाल सिंह, ''सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष'', राजस्थान हिन्दी गन्थ अकादमी, जयपुर, 1994।
4. बैन्जामीन जोसेफ, ''शेड्यूल कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स एण्ड सोसायटी'', एस.एस. पब्लिकेशन, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 1989।
5. रामगोपाल सिंह, ''सामाजिक न्याय, लोकतंत्र और जाति व्यवस्था'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1993।
6. नर्बदेश्वर प्रसाद, ''जाति व्यवस्था'', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1965।
7. बी.आर. अम्बेडकर, ''एनिहिलेशन ऑफ कॉस्ट'', थैकर एण्ड कम्पनी, बाम्बे, 1936।
8. बी.आर. अम्बेडकर, '' कॉस्ट्स इन इण्डिया'', भीम पत्रिका प्रकाशन, जालंधर, 1977।
9. अभय कुमार दुबे, ''आधुनिकता के आईने में दलित'', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002।
10. शहारे एवं गजमिए, ''डॉ॰बाबा साहब अम्बेडकर की संघर्ष यात्रा एवं संदेश'', सेगमेन्ट बुक्स, नई दिल्ली, 1993।
11. बी.आर. अम्बेडकर, ''द राईटिंग्स एण्ड स्पीचेज ऑफ डॉ॰बाबा साहब अम्बेडकर, वाल्यूम वन'', ए गर्वमेण्ट ऑफ महारा ट्र पब्लिकेशन्स मुम्बई, 1989।
12. ईश्वरीय प्रसाद, ''शूद्र राजनीति का भविष्य'', ग्रामीण साहित्य माला, दिल्ली 1999।
13. नन्दलाल, ''अम्बेडकर और सामाजिक एकता'', प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, नवम्बर 2015।
14. श्रीमती भारती, ''गाँधी और अम्बेडकर का योगदान–दलित एवं महिला उत्थान में'', गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, 2009।
15. डॉ॰हरिमोहन धावन, (सम्पा.) ''पूर्व देवा'' सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, मध्य प्रदेश दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन, उज्जैन, अप्रैल – सितम्बर 014।
16. डॉ॰हरिमोहन धावन, (सम्पा.)''पूर्वदेवा'' सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका , मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन, उज्जैन, अप्रैल – सितम्बर 2011।
17. डॉ॰वीरेन्द्र सिंह यादव, (सम्पा.) कृतिका'' अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवा िक शोध पत्रिका नया रामनगर, उरई(जालौन) उत्तर प्रदेश, जनवरी–जून 2008।
18. बी॰आर॰ अम्बेडकर, ''द अनटचेबल्स हु वेयर दे एण्ड व्हाई दे बिकम अनटचेबल्स'', अमृत बुक कम्पनी, दिल्ली, 1948।
19. बी॰आर॰ अम्बेडकर, 'स्टेट्स एण्ड माइनारिटीज'', थैकर एण्ड कम्पनी, बाम्बे, 1947।

20. बी॰आर॰ अम्बेडकर, ''हु वेअर द शूद्राज हाऊ दे कम टू वीद फोर्स वर्णा इन इन्डो आर्यन सोसायटी, थैकर एण्ड कम्पनी, बाम्बे, 1946।

21. राजेश गुप्ता, ''डॉ॰ अम्बेडकर और सामाजिक न्याय'' मानक पब्लिकेशन, दिल्ली, 1994।

22. डी॰आर॰ जाटव, ''डॉ॰अम्बेडकर का नैतिक दर्शन'', समता साहित्य सदन, जयपुर, 1968।

23. डी॰आर॰ जाटव, डॉ॰अम्बेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, समता साहित्य सदन, जयपुर, 1988।

24. धन्नजय कीर ''डॉ॰ अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन्स'', पापुलर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981।

25. प्रेम प्रकाश, '' डॉ॰अम्बेडकर पॉलिटिक्स एण्ड शिड्यूल कॉस्ट्स, आशीष प्रकाशन नई दिल्ली, 1993।

26. आर.के. क्षीर सागर, ''पॉलिटिकल थॉट ऑफ डॉ॰बाबा साहब अम्बेडकर'', इन्टेलेक्यूअल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1992।

27. डब्ल्यू.एन. कुबेर, ''डॉ॰अम्बेडकर अ क्रिटिकल स्टडी, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1979।

28. अरूण कुमार, (सम्पा.),'' उदारीकरण –भूमण्डलीकरण एवं दलित'',रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2010 ।

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 83–84, अक्टूबर,2015–मार्च,2016 पृ. 39–46 ***ISSN 0974 -1100***

डॉ. अम्बेडकर : समतामूलक समाज, जाति और धर्म

डॉ. दीपिका गुप्ता

.भारत बहुधर्मी ,बहुभाशी ,बहुजाति एवम् बहुसंस्कृति वाला समाज है। मोटे तौर पर इसमें अनेकता में एकता दिखाई देती है, तथापि ऐसे तत्व हैं जो इसकी शांति और सामाजिक सद्भाव को तो भंग करते ही हैं, एक समतामूलक समाज की स्थापना में भी रोड़ा अटकाते हैं। भाशा ,जाति, धर्म , वर्ण ,भारत के लिए अनेक अवसरों पर ऐसी ही विघटनकारी भूमिका निभाते दिखते हैं। भारतीय समाज में धर्म और जाति के तत्व ने बार–बार सामाजिक सद्भाव को भंग किया है। इस समाज में एक समतामूलक समाज की स्थापना व सामाजिक सद्भाव को कैसे बनाए रखा जाए यह एक विचारणीय प्र न है अन्यथा परिणाम हानिकारक भी हो सकते हैं।

धर्म के नाम पर हठधर्मिता एवम् कट्टरवाद ने भारत के टुकड़े किये और भारत को विभाजन का दं ा झेलना पड़ा। भारतीय समाज में युं तो आठ बड़े धर्म समूह हैं तथापि हिंदु धर्म को मानने वाले सर्वाधिक हैं। एक धर्म का दूसरे धर्म के प्रति वैमनस्य एवम् घृणा एक समस्या है तो धर्म के अंतर्गत ही भेदभाव भी एक समस्या है । जाति को हम इसी श्रेणी का तत्व मान सकते है जो समतामूलक समाज की स्थापना में एक अवरोध है व सामाजिक सद्भाव को भंग कर सकती है । जाति के दोशों को दूर करने और सामाजिक समता बनाए रखने की आव यकता है । प्र न यह है कि क्या हिंदू धर्म में सुधारवादी प्रवृत्ति है और इसके अंदर व्याप्त समस्या को दूर किया जा सकता है ।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर द्वारा प्रारंभ में हिंदू धर्म के अंतर्गत ही सुधार लाकर जातिगत बुराइयों वि ोशकर अस्पृ यता को समाप्त करने का प्रयास किया किंतु बाद में हिंदू धर्म की सुधारवादी क्षमता पर उनका अवि वास पैदा हो गया और वे बौद्ध धर्म को स्वीकार करने के लिए प्रेरित हुए।

वास्तव में हिंदू समाज में व्याप्त वि ोशीकृत कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था के क्षैतिजीय विभेद कब उर्ध्वाधर विभेद में परिवर्तित हो गये और कब वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था में बदल गयी इसके प्रमाणिक आधार नहीं हैं किन्तु इसने उच्च जाति और निम्न जाति जैसी व्यवस्था और तमाम बुराइयों को जन्म दिया व हिंदू समाज के अंतर्गत भोशणकारी सामाजिक व्यवस्था स्थापित हो गई। इस आलेख में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक सुधार ,उनके विचारों व प्रयासों एवम् दलित आंदोलनों पर दृश्टिपात कर ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार उन्होंने भोशणकारी व्यवस्था को प्रभावित किया और सामाजिक समानता को स्थापित करने का प्रयास किया। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचार स्पश्ट रुप से "भूद्र कौन थे" और "एनीहिले ान ऑफ कास्ट" में वर्णित हैं।[1]

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के पूर्व भक्ति आंदोलन के समय से ही समाज सुधार के प्रयास प्रारंभ किये गये पर वे उतने प्रभावी नहीं माने जा सकते हैं। रामानंद ,चैतन्य ,कबीर ,तुकाराम व अन्य ने भारतीय समाज में जाति के नाम पर प्रचलित अमानवीय प्रथाओं की निंदा की । उन्होंने लौकिक व परलौकिक दोनों जगत में सभी मानवों की अप्रतिम असमानता में वि वास व्यक्त किया तथा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने की वकालत की जिसमें प्रत्येक व्यक्ति समानता अनुभव कर सके । आधुनिक युग में विभिन्न सामाजिक और धार्मिक आंदोलन प्रारंभ हुये। इन्हीं से दलित आंदोलन का प्रारंभ माना जा सकता है जिसमें सामाजिक परिवर्तन व सुधार के माध्यम से सामाजिक समानता लाने का प्रयास किया गया । ब्रह्म समाज स्थापित कर राजा राम मोहन राय ने समाज की जाति आधारित असमानताओं के विरोध में तर्क दिये एवं जातिवाद व अस्पृ यता की भावना पर प्रहार किया। 1875 में दयानंद सरस्वती द्वारा आर्यसमाज की स्थापना कर इस दि ाा में उल्लेखनीय प्रयास भाुरू हुए। उन्होंने कहा कि अस्पृ यता वर्ण व्यवस्था का अनिवार्य भाग नहीं है। उन्होंने कार्य आधारित

सामाजिक दर्जा दिये जाने पर जोर दिया । जिसमें निम्न या उच्च कार्य के आधार पर प्रवे ा मिल सके।[2] घनभयाम भााह का तर्क है कि 'नववेदांत आंदोलन एवं ब्राह्मण विरोधी आंदोलनों ने भारत के कुछ भागों में जाति विरोधी एवं दलित आंदोलनों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[3] 1870 के द ाक में ब्राह्मण विरोधी आंदोलन एवं अस्पृ यता विरोधी आंदोलन ज्योतिबा फुले के ''सत्य ाोधक समाज'' के रूप में सामने आया । उनका मानना था कि हिंदूसमाज में दलितों को सम्मानपूर्वक जीवन जीने तथा सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त करने के लिए समाज सुधार आंदोलन आव यक है। महाराश्ट्र में इसके प्रारंभ के लिए उन्होंने स्कूल खोले। केरल में 1903 में एझावा जाति ने भी, जो अस्पृ य मानी जाती थी, श्री नारायण गुरू के नेतृत्व में अस्पृ यता विरोधी आंदोलन प्रारंभ किये और ''श्री नारायण धर्मा परिपालन योगम'' (एस.एन.डी.पी.) स्थापित किया। इन्होंने अपने समुदाय के सामाजिक कार्यो व प्रथाओं को संस्कारित करने; एझावा से नीचे की जातियों के प्रति अस्पृ यता न अपनाने तथा केरल में नए मंदिर बना कर सभी जातियों के लिए द्वार खोलने के कार्य किए। किंतु इससे भी इच्छित परिणाम प्राप्त न होने पर उन्होंने 1920 के द ाक में समानता हेतु ब्रिटि ा सरकार से अपने समुदाय के लिए आर्थिक, राजनैतिक लाभ दिये जाने की मांग की। तमिलनाडू में बीसवीं सदीं के दूसरे द ाक में रामा स्वामी नायकर या पेरियार के नेतृत्व में दलित आंदोलन उल्लेखनीय रहा । इसे ''आत्म सम्मान'' आंदोलन का नाम दिया गया पर इसे अस्पृ यों की प्रथाओं के संस्कृतिकरण तक ही सीमित नहीं रखा गया । उनका दृढ़ नि चय था कि ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म में दलितों की स्थिती को ठीक नहीं किया जा सकता । अतः उन्होंने जस्टिस पार्टी के बैनर तले अस्पृ यता निवारण के लिए तीव्र आंदोलन चलाए। उनके कट्टरवाद ने ब्राह्मणों के खिलाफ बदले की भावना से ऐसे कार्य किये जिसने सामाजिक समरसता को तो कम किया ही ,अस्पृ य समझे जाने वाले समुदायों का भी कुछ भला न हो पाया। पंजाब में भी ''आदि धर्म'' आंदोलन ने अस्पृ यों को हिंदू, मुस्लिम व सिक्ख जैसे धार्मिक समुदायों की तरह एक भिन्न इकाई माना । इसके प चात् डॉ. भीमराव अम्बेडकर के नेतृत्व में अस्पृ यता के विरूद्ध आंदोलन का केंद्र महाराश्ट्र बन गया ।

डॉ. अम्बेडकर के विचारों को देखें तो स्पश्ट है कि उन्होंने स्वयं यह स्वीकार किया कि जाति प्राचीन काल से ही भारतीय समाज की वास्तविकता नहीं रही है क्योंकि उनके अनुसार सारा विचार चार वर्णो का था , जो व्यवसाय पर आधारित थे। 1917 में जाति के ऊपर लिखे प्रथम लेख ''कास्ट इन इंडिया ,देअर मेकेनिज्म, जेनेसिस एण्ड डेवलपमेंट'' में उन्होंने लिखा कि हिंदू समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वै य एवं भाूद्र वर्गो से बना है और किसी एक वर्ग से दूसरे वर्ग में जाया जा सकता है यदि उस वर्ग की वि ोशताएं प्राप्त कर ली जायें तो । परंतु भानैः भानैः समाज के इन उपवर्गो ने खुलापन वाला चरित्र खोना प्रारंभ कर दिया और बंद इकाइयों में परिवर्तित हो गये।[4] रोड्रीग्ज के ाब्दों मे ''कुछ ने अपने दरवाजे बंद कर लिए और कुछ को अपने खिलाफ दरवाजे बंद मिले।''[5] क्रिस्टोफर जेफरलोट ने अपनी पुस्तक ''डॉ. अम्बेडकर एण्ड अनटचएबिलिटी'' में लिखा है –''पहले डॉ. अम्बेडकर का प्रयास रहा कि अस्पृ यों को हिंदू समाज के अंतर्गत ही बेहतर स्थान प्राप्त हो किंतु ऐसा न होने पर उस रणनीति को छोड़ दिया तथा दलितों को हिंदू समाज से बाहर ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है इस विचार को आगे बढ़ाया।''[6] इसीलिए ''ऐनीहिले ान ऑफ कास्ट'' में डॉ. अम्बेडकर ने जाति के भोशणकारी चरित्र को नश्ट करने के लिए जाति व्यवस्था को ही समूल नश्ट कर देने की बात कही।[7]

''ऐनीहिले ान ऑफ कास्ट" 1936 में जात पात तोडक मण्डल के लाहौर में होने वाले वार्शिक सम्मेलन में डॉ. अम्बेडकर द्वारा दिया जाने वाला प्रस्तावित अध्यक्षीय भाशण था किन्तु सम्मेलन के प्रायोजकों को भाशण के कुछ अं ा हिंदू धर्म व भाास्त्रों के प्रति असम्मानजनक लगे और डॉ. अम्बेडकर को कहा गया कि वे इनमें परिवर्तन करें। डॉ. अम्बेडकर के द्वारा मना करने पर उनका भाशण रद्द कर दिया गया एवं सम्मेलन भी नहीं हो पाया। बाबा साहेब ने 1936 में स्वयं के खर्च से इस भाशण को पुस्तक स्वरुप में प्रकाि ात करवाया । यह उनके जाति, धर्म और समतामूलक समाज संबंधी विचारों को स्पश्ट करती है। इस पुस्तक के दूसरे संस्करण में डॉ. अम्बेडकर ने गांधीजी की टिप्पणियों का जबाब दिया था और इसका तीसरा संस्करण 1944 में पुनःप्रकाि ात हुआ था "कास्ट इन इण्डिया : देअर मेकेनिज्म, जेनेसिस एण्ड डेवेलपमेंट"। यह 1916. में न्यूयार्क में एक सेमीनार

में प्रस्तुत भाशण था। डॉ. अम्बेडकर ने हिंदू जाति व्यवस्था व भाास्त्रों की आलोचना की । डॉ. अम्बेडकर का मानना रहा कि जाति व्यवस्था ने भारतीय समाज का कोई भला नहीं किया वरन् समाज के एक वर्ग अस्पृ यों को अत्यंत नुकसान पहुॅचाया। अतः इसे बिना झिझक समाप्त किया जाना चाहिए। किन्तु उनका यह भी मानना रहा कि हिंदू जाति व्यवस्था अन्तर्जातीय विवाह या अन्तर्जातीय खानपान मात्र से समाप्त नहीं होगी। जाति व्यवस्था को तोड़ने के लिये उस धार्मिक विचार को तोड़ना होगा जिस पर जाति स्थापित है।[8] इसके बाद ही समतामूलक समाज बनाया जा सकेगा। इस हेतु दलितों को राजनैतिक अधिकार व भाक्ति दिलाना मुख्य उद्दे य रहा।[9] दूसरी ओर महात्मा गाँधी की हिंदू वर्णाश्रम में अगाध आस्था थी और वे उसे बनाये रखना चाहते थे । हिंदू समाज को बनाये रखने के लिये वे वर्णाश्रम व्यवस्था को आव यक मानते थे। डॉ. अम्बेडकर के विचार कि अस्पृ यों के राजनीतिक स ाक्तिकरण के माध्यम से इस समस्या का समाधान किया जा सकता है से वे सहमत नहीं थे। इसके स्थान पर उन्होंने इसे सामाजिक समस्या मानते हुए इसके समाधान हेतु समाजिक–मानवीय उपागम या रणनीति पर ही जोर दिया। ''यंग इंडिया '' में उन्होंने अस्पृ यता पर प्रहार करते हुए लिखा कि कोई भी व्यवसाय व्यक्तियों के समाजिक दर्जे को निर्धारित नहीं करता। उन्होंने हिंदू धर्म व इसकी वर्णाश्रम व्यवस्था को बिना आघात पहुॅचाये व्यक्तियों में जागरूकता फैलाकर सीधे अस्पृ यता को नश्ट करने की वकालत की । जहॉ डॉ. अम्बेडकर जाति को नश्ट करने के लिये संघर्श छेड़ने की बात कहते थे ,गाँधी व्यक्तियों द्वारा स्वजागरण के माध्यम से अस्पृ यता को नश्ट करना चाहते थे ना कि समूल जाति व्यवस्था को । उनकी यह मत विभिन्नता पूना पैक्ट के दौरान सामने आई। डॉ. अम्बेडकर अस्पृ यों का एक पृथक निर्वाचक मण्डल बनाना चाहते थे इसे गाँधी अनुचित मानते थे और इसका विरोध करने के लिए उन्होंने आमरण अन ान भी किया और अस्पृ यों को पृथक निर्वाचक मण्डल नहीं बनाया जा सका । गाँधी ने दलितों को हरिजन का नाम दिया और 1932 में ही ऑल इंडिया हरिजन सेवक संघ स्थापित किया । डॉ. अम्बेडकर ने 1942 में ऑल इंडिया भोड्यूल्ड कास्ट फेडरे ान की नींव रखीं जिसने दलितों के संघर्श को आगे बढाया।

डॉ. अम्बेडकर ने राजनीतिक सुधार के लिये सामाजिक सुधार आव यक माना। उनका कहना था कि भारत में सामाजिक सुधार के आलोचक अधिक हैं और समर्थक कम । आलोचक दो प्रकार के हैं एक तो राजनीतिक सुधारक व दूसरे समाजवादी । डॉ. अम्बेडकर ने लिखा है कि एक समय था जब यह मान लिया गया था कि सामाजिक क्षमता व दक्षता के बिना कभी भी स्थायी प्रगति संभव नहीं है इसी कारण से जब भारतीय राश्ट्रीय कांग्रेस बनी तो उसके साथ सो ाल कॉन्फ्रेन्स स्थापित हुई। जहां कांग्रेस दे ा के राजनीतिक संगठन के कमजोर पक्षों से संबंधित थी वहीं सो ाल कॉन्फ्रेन्स हिंदू समाज के कमजोर बिन्दुओं को हटाने से संबंधित थी। डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि कुछ समय तक तो इन दोनों ने एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह कार्य किया और एक ही पण्डाल में दोनों के सम्मेलन होते रहे । किन्तु कालांतर में दोनेां दो दलों की तरह बर्ताव करने लगे। एक को राजनीतिक सुधार दल व दूसरे को सामाजिक सुधार दल कहा जाय तो अति ियोक्ति नहीं होगी। विडंबना यह रही कि धीरे – धीरे दोनों एक दूसरे के विरोधी बन गये। विवाद का बिन्दू था कि क्या राजनीतिक सुधार से पहले सामाजिक सुधार होना चाहिये? एक द ाक के बाद सो ाल कॉन्फ्रेन्स समाप्त होने लगी। भारतीय राश्ट्रीय कांग्रेस के सत्र में भाग लेने वालों की संख्या बढ़ने लगी और सो ाल कॉन्फ्रेन्स के सत्रेां में भागीदारी बहुत कम हो गयी । उसी पण्डाल में सो ाल कॉन्फ्रेन्स के सत्र आयेाजित करने की व्यवस्था बंद करवा की गई। हद तो तब हो गयी जब सो ाल कॉन्फ्रेन्स को अलग पण्डाल बनाने की अनुमति भी नहीं दी गयी । डॉ. अम्बेडकर ने लिखा है कि 1892 में इलाहाबाद में भारतीय राश्ट्रीय कांग्रेस के आठवें अधिवे ान में तो सो ाल कॉन्फ्रेन्स का अंत ही हो गया जब डब्ल्यू सी बनर्जी ने घोशणा की कि दोनेां में (भारतीय राश्ट्रीय कांग्रेस एवं सो ाल कॉन्फ्रेन्स में अर्थात राजनीतिक सुधार व सामाजिक सुधार में)कोई संबंध नहीं है। इसका तात्पर्य यह था कि लोग राजनीतिक स्वतंत्रता के लिये तो उत्साहित थे किन्तु वे ये नहीं देख पा रहे थे कि सामाजिक समानता के अभाव में राजनीतिक स्वतंत्रता एवं लोकतंत्र बेमानी हो जायेंगे और सत्ता पर वि ेश्टजनों का ही कब्जा बना रहेगा।

डॉ. अम्बेडकर ने प्र न किया कि जब कांग्रेसी मिलकर यह विचार दोहराते नहीं थकते कि एक दे ा का दूसरे दे ा पर भाासन करना उचित नहीं है तो फिर

एक वर्ग का दूसरे वर्ग पर भाासन कैसे उचित हो सकता है? सो ाल कॉन्फ्रेन्स जो सामाजिक सुधारों के लिये कार्य कर रही थी वह क्यों हारी ?वास्तव में सुधारों की आव यकता दो स्तरों पर थी एक तो हिंदू परिवारों में व दूसरे हिंदू समाज की पुनर्संरचना व पुर्नगठन के स्तर पर । परिवार में सुधार के लिये विधवा पुनर्विवाह, बाल विवाह, इत्यादि संबंधी सुधारों की आव यकता थी। उच्च जाति के होने के कारण ये सुधारक परिवार में सुधार के लिये तो चिन्तित थे किन्तु हिंदू समाज में सुधारों के लिये जाति व्यवस्था को नश्ट नहीं करना चाहते थे। इसी कारण से सामाजिक सुधार परिवार में सुधार तक सीमित थे। उच्च जाति के होने के कारण इन सुधारकों को राजनीतिक सुधार से पूर्व सामाजिक सुधार की आव यकता ही प्रतीत नहीं हुई।

डॉ. अम्बेडकर ने आर्थिक सुधारों के लिये भी सामाजिक सुधारों को आव यक माना। डॉ. अम्बेडकर ने लिखा है कि भारत के तथाकथित समाजवादी यूरोपीयों की नकल कर इतिहास की आर्थिक व्याख्या को भारत में लागू करना चाहते हैं वो भी भारत की सामाजिक स्थितियों को अनदेखा करके। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार संपत्ति की समानता किसी भी सुधार के पहले स्थापित होना चाहिये। उन्होंने कहा कि यह सोचना गलत है कि भाक्ति का स्त्रोत मात्र आर्थिक भाक्ति है क्योंकि यह मात्र श्रम विभाजन पर आधारित नहीं है बल्कि इसमें श्रमिकों का विभाजन भी सम्मिलित है। जाति व्यवहार में उसी प्रजाति के लोगों का सामाजिक विभाजन है। यह हिन्दू समाज में मि ानरी ताकत पैदा होने से रोकता है।

अन्य दे ाों की तरह भारत में सामाजिक क्रांति क्यूं नहीं हुई?क्योंकि इस वर्ग को पूरी तरह से असमर्थ बनाया हुआ था। न तो उनके पास हथियार थे और ना ही ि ाक्षा। इन्हीं विचारों के चलते डॉ. अम्बेडकर ने संविधान की ड्राफ्ट समिति के अध्यक्ष के नाते सामाजिक सुधार हेतु व समतामूलक समाज की स्थापना हेतु महत्वपूर्ण प्रावधानों को अंगीकार करवाया। उनका यह योगदान अतुलनीय है।

उनके ऐसे ही विचारों ने सामाजिक समानता के विचार को दि ाा दी और भारतीय समाज की बुराइयों को समाप्त करने का प्रयास किया जाता रहा । भारतीय संविधान में सामाजिक, आर्थिक,न्याय की प्राप्ति को लक्ष्य बनाया गया और सामाजिक भेदभाव को दूर करने हेतु प्रावधान किये गये जिससे भाोशण की

समाप्ति हो और समानता के साथ ही सामंजस्य भी स्थापित हो। किंतु आज भी ऐन केन प्रकारेण ऐसी घटनायें घटती रहती हैं। जो सामाजिक समस्या को भेद देती है रणवीर सेना जैसी जाति आधारित सेनायें बनती हैं और सामाजिक ढाँचे को मनचाहा स्वरूप देने का प्रयास करती हैं। अतः आज भी आव यक है कि भारत में कमजोर वर्गो को संरक्षण प्रदान किया जाए । संपन्न,प्रबल उच्च वर्गो की भी इसमें मन से भागीदारी हो और बदले की भावना का त्याग हेा । तभी यह संभव है कि सामाजिक समानता स्थापित हो और बनी रहे। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 8 सितम्बर 2014 को नई दिल्ली में केरल के दलित नेता अय्यनकली की 152वीं वर्शगाँठ के अवसर पर आयोजित सम्मेलन के अवसर पर बोलते हुए कहा कि भारत में मात्र समानता की ही आवश्यकता नही हैं वरन् आवश्यकता इस बात की है कि सामाजिक समरसता स्थापित की जाए (1)राश्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने भी कहा कि भारत में दिमागों की स्वच्छता की आवश्यकता है।

❐

सन्दर्भ –

1. *डॉ भीमराव अम्बेडकर ''ऐनीहिले ान ऑफ कास्ट''(नईदिल्ली :अर्नोल्ड),1990*
2. *जे.टी.एफ जॉर्डन,दयानंद सरस्वती : हिज लाइफ एण्ड आइडियाज (नई दिल्ली : ऑक्स फोर्ड) 1978*
3. *घन याम भााह, सो ाल मूवमेंट्स इन इंडिया :ए रिव्यू ऑफ लिटरेचर (नई दिल्ली :सेज) 1990 पृ.109*
4. *बी. आर. अम्बेडकर''कास्ट इन इंडिया देअर मेकेनिज्म,जेनेसिस एण्ड डेवलपमेंट'' इंडियन एन्टीक्वारी ,मई 61*
5. *व्ही.रोड्रीग्ज,दी ऐसेन्ि ायल राइटिंग्स ऑफ बी.आर. अम्बेडकर (नई दिल्ली :ऑक्सफोर्ड) 2004 पृ.257*
6. *क्रिस्टोफर जेफरलोट''डॉ. अम्बेडकर एण्ड अनटचएबिलिटी'' (नई दिल्ली:ब्लैक)2005 पृ.7*
7. *डॉ भीमराव अम्बेडकर ''ऐनीहिले ान ऑफ कास्ट''(नईदिल्ली :अर्नोल्ड),1990*
8. *भीमराव अम्बेडकर ''ऐनीहिले ान ऑफ कास्ट''(नईदिल्ली :अर्नोल्ड),1990*
9. *एम.एस.गोरे,दी सो ाल कन्टेक्स्ट ऑफ एन आइडियोलाजी –अम्बेडकर पालिटिकल एण्ड सो ाल थॉट ,(दिल्ली:सेज)1993 पृ.85*
10. *इंडियन एक्सप्रेस डॉट कॉम 8.9.14।*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 83–84, अक्टूबर,2015–मार्च,2016 पृ. 47–61 ***ISSN 0974 -1100***

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामाजिक सद्भाव और समावेशी विकास

डॉ. जनक सिंह मीना

सुहृदयं सांमनस्यम विद्वेशं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यामभि हर्यत वत्सं जातमिवाधन्या ।।

अथर्ववेद से लिए गए इस श्लोक का तात्पर्य है 'हम परस्पर बैर भाव को त्याग कर सुहृदय, मनस्वी, उत्तम स्वभाव वाले हों । एक दूसरे को सदैव प्यार की दृष्टि से देखों तो निश्चित रूप से हम सब सुखी रहेंगें । इस श्लोक में सामाजिक समरसता, सौहार्द, राष्ट्रीयता एवं बन्धुत्व की भावना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है और यदि उक्त विशेषताओं का मानव जीवन में अनुसरण होता है तो वह साव्तविक तथा श्रेष्ठ विकास होगा । यहाँ सर्वप्रथम सामाजिक सद्भाव क्या है, यह जानाना आवश्यक है जिसे इस प्रकार समझा जा सकता है– 'सामाजिक सद्भाव एक दूसरे के प्रति सहयोगात्मक विचारधारा एवं कर्मधारा है, जिसके प्रवाह से दुश्मनी धवस्त हो जाती है, आपसी दुराव खत्म हो जाता है तथा जिसके फलस्वरूप मैत्रीभाव का उद्भाश होता है, मित्रवत सम्बन्ध गहरा हो जाता है ।' या यों कहे 'मनुष्यों द्वारा नैसर्गिक जीवन निर्वाह, सुख–चैन, विकास एवं सहजीवन हेतु निर्धारित की गई व्यवस्था सामाजिक सद्भाव है, जहाँ परस्पर प्रेम, सहयोग एवं आत्मीयता का भरपूर प्रवाह हो ।'

सद्भाव से पूर्व स्वभाव को जानना नितान्त आवश्यक है । मानवीय अन्तः आवश्यक है । मानवीय अन्तः प्रवृत्ति का नाम स्वभाव है, जहाँ मति एवं गति का निखार होता रहता है । प्रायः मनुष्य स्वभाव के अनुसार विचार करता है, कार्य

सम्पन्न करता है तथा जब स्वभाव की दिशा अच्छी रहती है, वह सन्मार्ग पर चलता है और सराहनीय कार्य करता है । स्वभाव भी दो प्रकार का होता है – सुंदर स्वभाव एवं कलुशित स्वभाव । जिस मनुष्य में सद्गुणशील होता है उसमें मानवतावाद का माधुर्य रहता है, मानवीयता कलेवर रहता है । प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपना स्वभाव निर्मल एवं स्वच्छ रखे जिससे सद्भाव बढ़ता है, सामाजिक सौहार्द व्यापक बनता है, राष्ट्रीय सद्भाव फैलता है और वसुधैव कुटुम्बकम की भावना पनपती है । हृदय की प्रेरणा का वर्चस्व ही सद्भाव है जो मनुष्य जितना सद्भाव को अपनाता है, व्यवहार में लाता है, वह उतना ही महान होता है, जहाँ इसकी महानता बढ़ती जाती है, इसकी प्रतिभा प्रभावान होती जाती है एवं वह अनुकरणीय बनता जाता है ।

सामाजिक सद्भाव की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में बात करते हैं तो पता चलता है कि वेद, पुराण, सहिंता, स्मृति ग्रन्थ, उपनिषद्, दर्शन, रामायण, महाभावरत, भागवत गीता, जातक कथा, मनुस्मृति, कोटिल्य का अर्थषास्त्र आदि सभी में सामाजिक समानता, न्याय, सौहार्द, नैतिकता, चरित्रता का विस्तृत उल्लेख मिलता है । वेद ज्ञान एवं विज्ञान के स्त्रोत है, विद्वा एवं बुद्धि के भण्डार है, शिक्षा एवं दीक्षा के शिक्षालय है, धर्म एवं कर्म के प्रेरक स्तम्भ है, सभ्यता, शिष्टता एवं संस्कृति के मूल है, एकता एवं सद्भाव के साथ सामाजिक सौहार्द व विकास में सहयोगी है और विश्वबंधुत्व की स्थापना के लिए मील का पत्थर है । कौटिल्य का अर्थशास्त्र नामक रचना एक सद्ग्रन्थ है, जो सभी के लिए मार्गदर्शक, ज्ञान का पुंज, व्यवहार का प्रेरक है तथा राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, न्याय, शांति साम्पद्रदायिकता, सद्भावना एवं वसुधैव कुटुम्बकम का प्रेरणास्त्रोत है ।

सामाजिक सद्भाव और समावेशी विकास दोनों एक दूसरे से जुड़ी हुई संकल्पनाऐं है । समावेशी का सामान्य अर्थ है – विकास की सामान्य धारा में सबको सम्मिलित करना जिससे कि सामाजिक–आर्थिक विकास से सभी लोग समान रूप से लाभान्वित हो सकें । इन अवधारणाओं का वास्तविक उद्देश्य है कि विकास की मुख्यधारा से समाज को कोई भी व्यक्ति, वर्ग, सम्प्रदाय वंचित न रहे बल्कि विकास की रोशनी समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुंच सके । इसी परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार ने 11 वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र का शीर्षक

भी तीव्र एवं समावेशी विकास की ओर रखा । योजना आयोग के पूर्व उपाध्यक्ष डॉ. मान्टेक सिंह आहलूवालिया इस व्यवस्था को एक प्रक्रिया के रूप में देखते है जिससे विभिन्न वर्गों के लोग यह महसूस करें कि वे आर्थिक विकास से महत्वपूर्ण रूप से लाभान्वित हुए है । इसका लक्षित वर्ग में ग्रामीण तथा शहरी गरीब और कमजोर वर्ग है जिसमें भूमिहीन श्रमिक, सीमान्त तथा लघु कृषक, अनुसूचित जाति, जनजाति, अल्पसंख्यक समुदाय के कमजोर और निर्धन लोग सम्मिलित हैं । इसमें यह भी निहित है कि सभी वर्गों के साथ सभी क्षेत्र, स्त्री तथा बच्चे बिना किसी भेदभाव के विकस की प्रक्रिया से लाभान्वित हो । भारत के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी के एक भाषण में उन्होंने कहा था कि वैर से वैर नहीं जीता जाता अर्थात् वैमनुष्यता से वैमनुष्यता का अन्त नहीं होता । एकता एवं सद्भावना ही अपने देश की सच्ची शक्ति है । विविधता में एकता यही भारत की विशेषता है, शान्ति एवं सद्भाव के पथ पर ही विकास की गायत्री गतिपूर्वक अगे बढ़ सकेगी ।

इसमें उन्होंने देश की एकता, अखण्डता, समरसता, सामाजिक सौहार्द एवं राष्ट्रीय विकास को केन्द्रित करने का प्रयास किया है ।

भारत विविधताओं वाला एक विशाल देश है और विविधता किसी भी राष्ट्र के लिए धरोहर होती है । भारत के 29 राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में दो सौ से अधिक बोलिया और भावनाएं है । विश्व के प्रमुख धर्म भारत में विद्यमान है यथा हिन्दू, इस्लाम, जैन, बौद्ध, सिक्ख तथा ईसाई धर्म और देश में लगभग दो हजार जातियां निवास करती है । डॉ. राधा कुमुद मुखर्जी ने अपनी पुस्तक भारत की आधारभूत एकता में लिखा है कि – भारतवर्ष सम्प्रदायों और रीति–रिवाजों, धर्मों एवं सभ्यताओं, विश्वासों और बोलियों, जातीय प्रकारों और सामाजिक व्यवस्थाओं का एक अजायबघर है । परन्तु इन सारी भिन्नताओं के होते हुऐ भी भारतीय संस्कृति में मूलभूत एकता है । बाहरी भिन्नताओं के होते हुए भी भारतीय संस्कृति में मौलिक एकता पाई जाती है और यह सांस्कृतिक एकता उतनी ही प्राचीन है जितनी हमारी संस्कृति । संस्कृति ही व्यक्ति, समाज, देश का दर्पण होती है । चूंकि भारतीय संस्कृति में धार्मिकता, दर्शन, विज्ञान, ज्ञान का अथाह भण्डार है और नैतिकता, सच्चरित्रता, भ्रातृत्व, एकता, अखण्डता का पुंज है । इसी के चलते भारत विश्व गुरू बन पाया था । भारत में सामाजिक रूप से अनेक

भिन्नताएं विद्यमान है जिनके कारण रीति–रिवाज, बोली, भाषाऐं, कला एवं गीत, मान्यताऐं एवं विचारों का विशाल समागम है ।

आज पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से भारत में अनेक कलाओं, बोलियो, भाषाओं, रीति–रिवाजों, प्रथाओं का अस्तित्व खतरे में है और दूसरी और विकास की अंधी दौड में प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन ने विकृतियां उत्पन्न कर दी हैं तथा देश में कई समस्याऐं एवं चुनौतियां खडी हो गई हैं । उदाहरण के तौर पर भारत में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में आदिवासी जनजातियां प्रकृति उपासक रही हैं और पूरी तरह से प्रकृति पर निर्भर होती है । जल, जंगल और जमीन ही उनके लिए सब कुछ है, परन्तु विकास के नाम पर आदिवासियों को प्राकृति संसाधनों से दूर किया जा रहा है, उनका यह विस्थापन पर्यावरण विरोधी भी है और उनका अस्तित्व भी खतरे में है । आज कई क्षेत्रों में इनकी बोली, भाषाऐं, कलाएं विलुप्त हो गई है या प्रायः विलुप्ति के कगार पर है । यहां तक की विकास की अंधी दौड़ एवं प्राकृतिक संसाधनों से खदेड़ने एवं विस्थापन से उत्पन्न समस्या के कारण कई जनजातियां विलुप्त हो गई है । झारखण्ड में पिछले वर्षों से आदिवासियों के द्वारा उनके विस्थापन का विरोध इतना बढ़ गया है कि वहाँ अशांति का वातावरण फैला हुआ है और आदिवासियों द्वारा की जा रही कार्यवाही को नक्सलवाद का नाम दिया जा रहा है । अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि विकास तो हो पर आदिवासियों की कीमत पर नहीं होना चाहिए । देश में सामाजिक सद्भाव, सौहार्द बनाये रखने के लिए इन्हें विकास की मुख्यधारा में जोड़कर सहभागी बनाया जाना चाहिए ।

संविधान में इसकी उद्देशिका में कहा गया है कि : हम भारत के लोग. ..... को प्राप्त करने के लिये संविधान को अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं ।'' इसमें सभी को समानता, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय, स्वतंत्रता, समता, राष्ट्रीय एकता, अखंडता और बंधुता का प्रावधान करके कमजोर वर्गो को संरक्षण दिया गया है जिससे वे भी विकास में सम्मिलित हो सके । भारतीय संविधान के अनुच्छेद 46 में यह प्रावधान किया गया है कि राज्य द्वारा समाज के कजोर वर्ग विशेष रूप से अनुसूचित जाति, जनजाति के लिये विशेष कार्य किये जायेगें जिनसे उनकी शैक्षणिक तथा आर्थिक स्थिति में सुधार हो सके और उन्हें

सामाजिक अन्याय व शोषण से बचाया जा सके । भारतीय संविधान में सामाजिक सद्भाव एवं सौहार्द बनाये रखते हुऐ ऐसे प्रयस किये गये हैं जिससे एस.टी, एस. सी., ओ.बी.सी., अल्पसंख्यकों, महिलाओं, दलित एवं दमित लोगों के हितों का संरक्षण किया जा सके और इन्हें विशेष प्रावधानों के माध्यम से विकास में शामिल किया जा सके । भारत में आरक्षण का प्रावधान इसी परिप्रेक्ष्य में किया गया है परन्तु उसकी क्रियान्विति प्रावधानानुसार नहीं हो सकी है ।

देश में व्याप्त असामाजिक तत्व राष्ट्रीयता एवं अखण्डता को चुनौती प्रस्तुत करते हैं । देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनैतिकता, संस्कारहीनता, नक्सलवाद, आतंकवाद की घटनाओं ने सामाजिक सद्भाव एवं सौहार्द को नुकसान पहुंचाया है । ऐसी अघटनाओं में लिप्त व्यक्तियों की कोई, जाति, धर्म, सम्प्रदाय नहीं होता बल्कि वे कुत्सित भावना एवं अमानवीय व्यवहार के पोषक होते हैं । कभी धर्म के नाम पर दंगे भड़काए जाते हैं तो कभी मन्दिर–मस्जिद, चर्च, गुरूद्वारों के नाम पर खून खराबा करवाया जाता है । कभी जाति, धर्म, सम्प्रदाय, क्षेत्रीयता के नाम पर तो कभी बोली, भाषाओं के नाम पर बांटने के प्रयास किये जाते है, परन्तु भारतीय संस्कृति में ऐसे तत्व एवं घटक विद्यमान है जो इन सबसे परे हटकर सामाजिक सद्भाव के साथ विकास में सभी को सम्मिलित करने की क्षमता रखते हैं ।

धार्मिक क्षेत्र में भी अनेकता तो देखी जा सकती है, परन्तु इसके उपरान्त भी हम सब एकता की डोर में बंधे हुए हैं । प्रायः सभी सम्प्रदाय, आत्मा की अमरता, एक देववाद, मोक्ष, श्रवण और मनन आदि सिद्वान्तों को मानते हैं । हमारे सभी धार्मिक ग्रन्थ यथा रामायण, गीता, बाइबल, कुरान आदि सभी सद्मार्ग, प्रेम, सौहार्द, अहिंसा, नैतिकता, धर्माचरण की शिक्षा देते हैं और कोई भी मजहब वैर से रहना नहीं सिखाता बल्कि भाईचारा, मानवता, विश्वबन्धुता का पाठ पढ़ाते हैं । सभी धर्मों के प्रति एक सदृश्य विचार रखना एवं किसी से रागद्वेश एवं भेदभाव नहीं रखना सर्वधर्म समभाव है, जिससे एकत्व बढ़ता है, भ्रातृत्व भाव का फैलाव होता है ।

व्यक्तिगत पहचान एवं सामूहिक पहचान दोनों अलग–अलग धारणाऐं हैं और दोनों के प्रभाव भी अलग–अलग होते हैं । कोई समस्या गम्भीर प्रकृति की होने परन्तु व्यक्तिगत होने के कारण दब कर रह जाती है, परन्तु यदि वहीं

समस्या किसी समूह की होती है तो उसका सीधा प्रभाव पड़ता है । भारतीय राजनीति के संदर्भ में देखा जाये तो आये दिन व्यक्तिगत आक्षेप के साथ–साथ सामूहिक आक्षेप भी लगाये जाते रहे है । उदाहरण स्वरूप सरकार का कोई मंत्री या सांसद कोई वक्तव्य देता है और यदि उसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है तो सम्बन्धित राजनीतिक पार्टी एवं सरकार यह कह कर पल्ला झाड़ लेती है कि यह व्यक्तिगत विचार हो सकता है । चुनावों के दौरान व्यक्तिगत एवं सामूहिक हमले आम बात हो जाती है जैसे लोकसभा के चुनाव में उत्तरप्रदेश के एक उम्मीदवार ने समुदाय विशेष का पक्ष लेते हुए दूसरे समुदाय के प्रति उत्तेजित करने एवं सामाजिक अशान्ति वाला वक्तव्य 'बोटी चोटी काट देगें' दिया । ऐसे भड़काऊ बयान सामाजिक सद्भाव एवं सौहार्द के लिए समस्या बन जाते हैं । वहीं हम दूसरी ओर सामूहिक रूप से दीपावली, ईद, होली, दशहरा, लोडी आदि त्यौहार मिलकर मनाते है तथा विभिन्न दलों, संगठनों द्वारा मिलन समारोह, इफ्तार पार्टी की दावतें दी जाती हैं, इस प्रकार के आयोजनों से सामजिक सद्भाव के साथ शांति एवं सौहार्द में वृद्धि होती है ।

आज सरकार द्वारा सांस्कृतिक आदान–प्रदान के लिए भी कई योजनाऐं एवं कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, जिनमें अन्तर्राज्यीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे अवसर उपलब्ध करवाये जा रहे हैं । इनके माध्यम से एक दूसरे की संस्कृति को समझने, उसका महत्व जानने एवं आदर करने का मौका मिलता है, साथ ही सामाजिक दशाओं का ज्ञान होता है । इससे व्यावहारिक अनुभव होता है जिससे विकास के लिए उचित नियोजन में मदद मिलती है । सामाजिक वंचना के शिकार लोगों को विकास की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए वास्तविक तथ्यों, जानकारियों, आंकड़ों की पहचान होती है । उदाहरण स्वरूप भारत के योजना आयोग ने वर्ष 2012 में गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वालों का निर्धारण करने के लिए गरीबी को परिभाषित किया था जिसमें शहरी और ग्रामीण बी.पी. एल, परिवारों के निर्धारण के लिए प्रतिदिन व्यक्तिगत आय को आधार बना कर निर्धारण किया गया था जिसकी पूरे देश में आलोचना हुई, क्योंकि गरीबी को निर्धारित करने वाले योजना आयोग के सदस्यों एवं अन्य को न तो गरीबी का पता है, न गरीब का पता है और बिना व्यावहारिक स्थिति को जाने न तो सही

परिभाषा गढ़ी जा सकती है और न ही किसी सही नीति का निर्धारण किया जा सकता है ।

समावेशी विकास के लिए समाज के वंचित, दलित, दमित वर्ग की समस्याओं, चुनौतियों, आवश्यकतों को जानना अति आवश्यक है । इन वर्गो को विकास में सम्मिलित करने के लिए सर्वप्रथम इनके मानवीय विकास के पहलुओं जिनमें शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता के साथ आधारभूत आवश्यकताओं पर बल दिया जाना चाहिए । कई बार प्रश्न उठते रहे हैं कि इन वर्गों को संविधान में आरक्षण एवं कुछ विशेष प्रावधान क्यों किये गये हैं ? और यदि किये गये हैं तो आजदी के 67 साल बाद भी इनका क्या औचित्य है ? परन्तु वास्तविकता की और कोई नहीं जाना चाहता और न ही जानना चाहता है । इस ओर कोई नहीं देखता कि इन वर्गों के साथ कितने अन्याय और जुल्म ढ़ाये गये और वे आज भी ढ़ाये जा रहे हैं । देश की आजादी के 67 वर्षों बाद भी इन वर्गों के लोग स्वतंत्र क्यों नहीं हो पाये हैं ? इसके लिए सरकारों को चाहिए कि इन वर्गों की वास्तविक तस्वीर को सामने लाये । तथ्य, आंकड़े, सूचनाऐं वैज्ञानिक पद्धति से एकत्रित किये जायें, जिसमें किसी प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं हो । किसी भी कार्यक्रम एवं योजना के वास्तविक तथ्यों एवं कारकों का पता लगाया जाना चाहिए । जैसे भारत सरकार एवं राज्य सरकारों ने अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ी जातियों, अल्पसंख्यकों, महिलाओं आदि के लिए छात्रवृत्ति की योजना चला रखी है, परन्तु इसकी उपादेयता एवं औचित्य की समीक्षा की जानी चाहिए । इसके स्थान पर इन वर्गों के बच्चों के लिए शिक्षा के क्षेत्र में 'पूरा' 'अंग्रेजी ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाओं का विस्तार जैसी योजनाओं को लागू किया जाना चाहिए । यदि इन वंचितों को विकास में सम्मिलित करने के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया करवा दी जायेगी तो छात्रवृत्ति की आवश्यकता ही खत्म हो जायेगी । इसी प्रकार स्वास्थ्य, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में इन सुविधाओं का विस्तार किये जाने की आवश्यकता है ।

भारत में समावेशी विकास की संकल्पना कोई नई बात नहीं है । प्राचीन धर्म ग्रन्थें में भी सभी लोगों को साथ लेकर चलने का भाव निहित है । 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'' में भी सबको साथ लेकर चलने का भाव है लेकिन नब्बे के दशक में वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण की प्रक्रिया के प्रारम्भ होने से यह शब्द

नये रूप में प्रचलन में आया है क्योंकि उदारीकरण के दौर में वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं को भी आपस में निकट से जुड़ने का मौका मिला और अब यह संकल्पना देश और प्रान्त से बाहर निकलकर वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भी प्रांसगिक बन गई है । सरकार द्वारा घोषित कल्याणकारी योजनाओं में समावेशी विकास पर विशेष बल दिया गया है और 12 वीं पंचवर्षीय योजना 2012–17 का पूरा जोर इस प्रकार से त्वतिर, समावेशी और सतत् विकास के लक्ष्य हासिल करने पर है । समावेशी विकास में सभी को समान अवसरों के साथ विकास की उपलब्धता होती है । इसमें ऐसा विकास जो न केवल नए आर्थिक अवसर पैदा करें बल्कि समाज के सभी वर्गों के लिए बुनियादी सुविधाएं यानि आवास, भोजन, पेयजल, शिक्षा, कौशल, विकास स्वास्थ्य के साथ–साथ एक गरिमामय जीवन जीने के लिए आजीविका के साधनों की उपलब्धता हो तथा ऐसा करते समय पर्यावरण संरक्षण पर भी पूरा ध्यान देना होगा, क्योंकि पर्यावरण की कीमत पर किया गया विकास न तो टिकाऊ होता है और न समावेशी हो सकता है ।

देश की आजादी के सातवें दशक में भी एक चौथाई जनसंख्या अभी भी गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने को मजबूर है और मूलभूत सुविधाओं से वंचित है । भारत में समावेषी विकास की आवधारणा सही मायनों में जमीनी धरातल पर नहीं उतर पाई है । समावेशी विकास ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों में सन्तुलित विकास पर निर्भर करता है और इसे समावेशी विकास की पहली शर्त के रूप में माना जाता है । महानरेगा जैसी और भी कई रोजगारपरक योजनाऐं क्रियान्वित की जा रही है जिनसे लोगों को सहारा मिला है, परन्तु आजीविका का स्थायी समाधान नहीं हो पा रहा है । देश के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने अपने चुनावी घोषणा पत्र में सुशासन और समावेशी विकास, न्यूनतम शासन अधिकतम अभिशासन' की बात कही और 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत,' 'सबका साथ सबका विकास' का नारा दिया था, अभी इनकी क्रियान्विति को व्यावहारिकता में लाने का इन्तजार है ।

सामाजिक सद्भाव एवं समावेशी विकास के अन्तर्गत केन्द्रीय बिन्दू है कि भारत में विकास प्रक्रिया ने सामाजिक तनाव में किस प्रकार बढ़ोतरी की है और कैसे सामाजिक सद्भावना की संभावनाओं को क्षीण किया है ? आज वैश्विक

जगत में विकास की बात हो रही है और विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का बोलबाला है, वहीं दूसरी और विकास की मुख्यधारा की बात हो रही है अब प्रश्न उठता है कि विकास की मुख्यधारा क्या है ? इसमें कौन–कौन सम्मिलित है ? इसमें कौन लोग अछूते हैं अथवा वंचित है ? लोग मुख्यधारा से वंचित या दूर क्यों है। ? राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक रूप से वंचित या उपेक्षित लोगों के लिए समावेशी नीति निर्माण के पर्याप्त प्रयास किये जा रहे हैं अथवा नहीं ? ये कुछ ऐसे प्रश्न है जो शासन–प्रशासन की नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन के साथ वास्तविक इच्छा शक्ति को वास्तविकता के धरातल पर परखने की ओर इशारा करते हैं । भारत एक लोक कल्याणकारी राज्य है, और लोकल्याणकारी राज्य में अधिकतम लोगों के कल्याण की बात की जाती है तथा सभी को अवसरों की समानता के साथ समान अधिकार दिये जाते हैं, परन्तु क्या व्यावहारिकता में ऐसा होता है ? एक तरफ 'भारत' और दूसरी आरे 'इण्डिया' है और जब तक इन दोनों के अन्तर अथवा खाई को पाटने का काम नहीं किया जायेगा, सामाजिक सद्भाव और समावेशी विकास की कल्पना नहीं की जा सकती ।

देश की सामाजिक स्थिति पर दृष्टिपात की जाये या आर्थिक, सांस्कृतिक परिदृश्य की समीक्षा की जाये, प्रत्येक स्तर पर दो पहलू विद्यमान है । देश की राजनीति किस दिशा की ओर अग्रसर है और किस प्रकार से आज बाजारवादी संस्कृति अपने पैर फैला रही है, दैनिक जीवन में देखा जा सकता है । मूल्य, परम्पराएं, नियम, कानून कायदे, रीति–रिवाज, नैतिकता, ईमानदारी, सच्चरित्रता आदि सभी को भुला दिया है और विकासवादी अवधारणा की आड़ में मानवीय सम्बन्ध, पारिस्थितिकी, पर्यावरण संरक्षण को भुला कर स्वार्थपूर्ण नीतियों का निर्माण एवं क्रियान्विति ने विभिन्न वर्गों, समदुायों, क्षेत्रों, राज्यों के बीच संघर्ष और तनाव उत्पन्न किया है । एक–दूसरे के अधिकारों का हनन किया जा रहा है, शोषण, अत्याचार और जुल्म ढ़ाये जा रहे हैं और वैयक्तिक जीवन के विकास में अनावश्यक हस्तक्षेप हो रहा है जिससे असंतोष, ईर्ष्या, द्वेश के साथ कटुता पैदा हो रही है । समर्थ कमजोर पर, कुलीन वर्ग दुर्बल एवं वंचित वर्गों पर, शासक–शासितों पर मनमाने तरीके से कहर बरपा रहे हैं, जिससे हमारी संस्कृति, निश्पक्षता, निरपेक्षता, सामाजिक सद्भाव एवं सौहार्द पर प्रश्न चिन्त लग रहे हैं ।

इस गला काट बाजारवादी प्रतिस्पर्धात्मक विकास की अंधी दौड़ में सामाजिक ताना–बाना, नाते–रिश्ते सभी दर किनार कर दिये हैं और द्वेषता का विष घोला है । आज देश की सबसे विश्वसनीय एवं लोगों की सबसे बड़ी उम्मीद माने जाने वाली न्यायपालिका भी सवालों के घेरे में खड़ी है और एक बात निकल कर आ रही है कि भ्रष्टाचार की पराकाष्ठा में सभी घिरे हुए हैं, क्योंकि आधार स्तर से सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों पर भ्रष्टाचार, बलात्कार, छोड़खानी के आरोप दिनों दिन सामने आ रहे हैं । राजनीति में तो संसद में ही अब अश्लील संदेश एवं विडियों मोबाईल पर देखी जाती हैं तो इससे उनके नैतिक स्तर का पता चल जाता है । एक और बात उभर कर आती है कि जिन उद्देश्यों एवं लक्षित लोगों के लिए विकास कार्यक्रम या योजनाओं का निर्माण होता है उनके सैद्वान्तिक उद्देश्य एवं लक्ष्य गंभीर एवं आदर्श होते हैं, परन्तु जब क्रियान्विति की बारी आती हो व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीनों ही नदारद नजर आते हैं । विकास कार्यक्रम एवं योजनाऐं जिन लोगों के कल्याण एवं उत्थान के लिए बनाये जाते हैं, उन तक तो उनका लाभ भी नहीं पहुंच पाता है, परन्तु उनके विकास के नाम पर चल रही योजनाओं से दूसरे लोग अपना स्वार्थ सिद्ध अवश्य कर लेते हैं । विकास के नाम पर प्राकृतिक धरोहर को नष्ट किया जा रहा है जिससे नयी समस्याऐं एवं चुनौतियां उत्पन्न हो रही है । जैसे बढ़ते प्रदूषण एवं सिमटते पर्यावरण के कारण जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, भूस्खलन जैसी समस्याऐं एवं चुनौतियां सामने आ रही है और पूरा जीवन चक्र अस्त–व्यस्त होता जा रहा है । आज न केवल वनस्पतियों में अपितु जीव जन्तुओं में कई प्रजातियां लुप्त प्रायः हो गयी है । हालांकि हमने वनस्पति की अनेक प्रजातियां बनाने में सफलता हांसिल की है, परन्तु प्राकृतिक जैसे गुण नहीं होने के कारण उसके दुश्प्रभाव भी सामने आ रहे हैं । इसी प्रकार विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनेक अविष्कार एवं खोज हुई हैं, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी हम काफी आगे बढ़े हैं, परन्तु हमारी अपेक्षाएं और भी आगे बढ़ती चली गयी और जो सन्तुष्टि मिलनी चाहिए थी उससे आज भी वंचित है ।

अब प्रश्न उठता है कि किस प्रकार समावेशी विकास की व्यूरचना सामाजिक सद्भाव की दिशा में काम करेगी ? इस प्रश्न के उत्तर खोजने के

लिए हमें मंथन करना होगा । समावेशी विकास में सर्वप्रथम विकास से अब तक वंचित लोगों, क्षेत्रों का सम्मिलित करने की आवश्यकता है और तत्पश्चात वहां की पारिस्थितिकी को मद्देनजर रखते हुए आवश्यकता एवं प्राकृतिक संतुलन को देखना होगा ।

विकास का संबंध केवल आर्थिक प्रगति तक ही सीमित नहीं है, अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक एवं सभ्यतामूलक संदर्भों के उत्थान से भी है । विकास केवल व्यक्ति तक रेखांकित नहीं है, बल्कि समष्टि तक है, जहाँ व्यक्ति, व्यक्तित्व के साथ–साथ समाज की सृमद्वि होती है । विकास के साथ समरसता के लिए जरूरी है कि भेदभाव, अस्पृश्ता, वर्गवाद को खत्म किया जाये । साम्प्रदायिकता, जातियता, क्षेत्रीयता, मजहब, धार्मिक उन्माद का अन्त किया जाये । अभी हाल ही में देश की सर्वोच्च सेवा कही जाने वाली भारतीय सिविल सेवा में भाषायी भेदभाव या यों कहे असन्तोष उभरकर सामने अया जिसमें देशभर में लगभग 1200 पदों के लिए आयेाजित हुई परीक्षा में मात्र 26 विद्यार्थी ही हिन्दी माध्यम से सफल रहे है जो कि लगभग 2 प्रतिशत है, शेष 98 प्रतिशत अंग्रेजी माध्यक के विद्यार्थी चयनित हुए । देश भर में आन्दोलन एवं हड़ताल हुई परन्तु नतीजा सिफर क्योंकि समस्या की जड़ तक पहुंचे बिना ही निर्णय ले लिया गया ।

यूपीए सरकार ने साम्प्रदायिक व लक्षित हिंसा रोकथाम विधेयक, 2011 का प्रारूप तैयार किया जिसमें देश में दो प्रकार के आपराधिक कानून, न्याय व्यवस्था एवं दण्ड का प्रावधान तैयार किया गया । इस विधेयक के माध्यम से बहुसंख्यकों, हिन्दुओं को प्रभुत्ववादी, दंगाई चरित्र एवं हिंसात्मक प्रकृति का माना गया । दूसरी और धार्मिक व भाषाई अल्पसंख्यकों को वंचित एवं पीड़ित समूह माना गया । दंगा होने पर राज्य सरकार को दोषी व अक्षम मानकर उसे भंग करके राष्ट्रपति शासन लगाने का अधिकार केन्द्र सरकार को प्रदान किया गया । देश के प्रमुख सामाजिक संगठनों, राजनीतिक दलों, बुद्विजीवियों तथा कई राज्यों के मुख्यमंत्रियों द्वारा उक्त विधेयक के आपत्तिजनक, विभेदकारी प्रावधानों पर तीव्र प्रतिक्रिया व विरोध प्रकट किया गया । बाद में इस प्रस्तावित बिल में कुछ धाराऐं निरस्त करते हुए नया प्रारूप तैयार किया गया और संशोधित बिल का नाम दिया – साम्प्रदायिक हिंसा रोकथाम विधेयक, 2013 लेकिन बिल में साम्प्रदायिकता को

रोकने का काम और राजनीति का पुट अधिक नजर आता है । इसी प्रकार इसके विरोध में भी विरोध कम और राजनीति अधिक दिखाई देती है । इस बिल के प्रारूप से ही ऐसा प्रतीत होता है कि साम्प्रदायिक हिंसा जरूरी है क्योंकि यहां सभी हिन्दुओं, बहुसंख्यकों को प्रभुत्ववादी, दंगाई चरित्र एवं हिंसात्मक प्रकृति का मान लिया गया है जो किसी भी दृष्टिकोण से न उचित है और न ही तर्कसंगत है । इसके विपरीत जब देश में आतंकवादी गतिविधियां होती है या आतंकवादी घटनाएं व हमले होते हैं तो दूसरे सम्प्रदाय पर सवाल खड़े कर दिये जाते हैं क्योंकि यह धारणा बनी हुई है कि इस प्रकार की अपराधिक प्रवृत्तियों में लिप्त उस सम्प्रदाय विशेष के ही होते हैं परन्तु वासतविकता यह है कि अपराधिक प्रवृत्ति, देशद्रोहियों, आतंकवादी एवं हिंसात्मक वातावरण पैदा करने वालों की न तो कोई जाति होती है, न सम्प्रदाय और न ही कोई धर्म ।

इस प्रकार की गतिविधियों की रोकथाम के लिए लोकनीति, नैतिकता, विश्वास एवं सामाजिक तरीके अधिक प्रभावी हो सकते हैं । लोकनीति विधि का अनौपचारिक स्त्रोत है । उदाहरण के तौर पर पुराने समय में गांवों के अन्दर सभी फैसले पंच–पटेलों के द्वारा लिये जाते थे और सभी को स्वीकार थे क्योंकि उनमें नीति, नैतिकता, सद्भाव एवं तर्कपूर्ण औचित्यता निहित होती थी और आज की तरह घूंस, रिश्वतखोरी, बेईमानी, अनैतिकता, गलत फैसले नहीं होते थे ।

विकास, उन्नति, प्रगति एवं शीर्ष की ओर सभी आगे बढ़ना चाहते हैं और इसके लिए आवश्यक है बिना किसी भेदभाव, ऊँच–नीच, अस्पृश्यता के सभी को सहगामी बनाते हुए आगे बढ़े तभी समाज–देश में समरसता का वातावरण बन सकेगा । कहते हैं– आग से सब डरते हैं इसलिए कि आग जलाती है मगर हम अपने स्वार्थ की सिद्धी के लिए कई बार इतने अधिक बर्बर हो जाते हैं कि दूसरों को आग में झौंक देते हैं । इसलिए पूर्वजों ने हमें बार–बार समझाया कि – 'आत्मनः प्रतिक्लानि परेणां न समाचरेत ।' अर्थात वह जो तुम नहीं चाहते दूसरे तुम्हारे लिए करें, तुम भी नहीं करों । वास्तव में सामाजिक सद्भाव, समरसता एवं अहिंसा की शुरूआत यहीं से होती है ।

वर्तमान में आर्थिक विषयों पर हो रही तमाम चर्चा बाहरी वित्त पर पड़ रहे दबाव और अर्थव्यवस्था को 5 फीसदी की धीमी विकास दर से उबारने पर केन्द्रित

है । अब उन तात्कालिक लक्ष्यों से परे मध्यम अवधि के दौरान तेज उच्च और समावेशी विकास दर हासिल करने के बारे में सोचना होगा । इस हेतु चार प्रमुख बाधाऐं है यथा–रोजगार विरोधी कानून, लुभावनी कल्याणकारी योजनाऐं, शासन–प्रशासन की कमजोरी एवं शहरीकरण की चुनौती है । देश में आजादी के 67 साल बाद लगभग 50 करोड़ श्रमिकों में से 90 फिसदी से अधिक असंगठित क्षेत्र के रोजगार के माध्यम से अपना जीवनयापन कर रहे हैं तथा उन्हें रोजगार की सुरक्षा भी प्राप्त नहीं है और उनकी आय भी अत्यन्त कम है । दूसरा कारक जो व्यापक विकास में विघ्न बना हुआ है वह है लोकप्रिय राजकोषीय नीतियां और प्रतिस्पर्धी अदूरदर्शी राजनीति । इनमें काम का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, भोजन का अधिकार आदि ऐसी ही योजनाऐं है जिनमें अपरिपक्वता साफ झलकती है और विकास एवं सद्भावना कम, लुभावनापन अधिक दृष्टिगोचर होता है । दूसरी तरफ भारी सब्सिडी का माहौल तैयार किया जाता है और इस तरह की योजनाओं में समावेश एवं सौहार्द के स्थान पर भ्रष्टाचार दिखाई पड़ता है जिससे राजकोषीय घाटा बढ़ता है, मंहगाई में इजाफा एवं भारी भरकम बाहरी घाटा और उच्च ऋण दर सामने आती है ।

तीसरी बाधा के रूप में शासन और प्रशासन जो कि हमारे आर्थिक एवं सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करते हैं । प्रशासन का स्तर दिन पर दिन गिरता जा रहा है और राजनीतिक व्यवस्था ने सारी हदें ही पार कर दी है । उनका जनसेवा और वैचारिक प्रतिबद्धता से कोई वास्ता नहीं है । चौथी बाधा का अनुभव है कि शहरीकरण का संबंध उच्च उत्पादकता और विकास से हैं । यदि वास्तव में समावेशी विकास के साथ आगे बढ़े तो निश्चित रूप से सामाजिक सद्भाव को कायम रखा जा सकता है । इसकी झलक देश के प्रधानमंत्री द्वारा हाल ही में स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर लाल किले की प्राचीर से तिरंगा फहराते हुए अपने भाषण में अपने आप को प्रधानमंत्री नहीं अपितु 'प्रधान सेवक' बताते हुए कहा ''यह देश राजनेताओं ने नहीं, किसानों, मजदूरों, नौजवानों, शिक्षकों, वैज्ञानिकों और समाजसेवकों ने बनाया है । हम बहुमत के बल पर नहीं, सहमति के धरातल पर आगे बढ़ना चाहते हैं ।'' इसमें सबको साथ लेकर सबका विकास करने की अवधारणा निहित है, जो देश को एकता की डोर में बांध कर सामाजिक सद्भाव करने का काम करेगी ।

भगवान महावीर ने सत्य, अहिंसा के रास्ते को अपनाने की बात कही और इनको जीवन में उतारने का संदेश दिया । उनका संदेश न केवल जीव–जन्तुओं के संदर्भ में था अपितु पूरी सृष्टि के संदर्भ में था । महात्मा गांधी ने आजादी से पूर्व और पश्चात में देश में व्याप्त सामाजिक भेदभाव की खाई को पाटने और सभी वर्गों, समाजों को बराबरी की स्थिति में लाने पर जोर दिया । स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो में 11 सितम्बर 1893 में अपने भाषण में कहा था कि ''साम्प्रदायिकता, संकीर्णता और इनसे उत्पन्न भंयकर धर्म–विषयक उन्मत्ता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुके हैं । इनके घोर अत्याचार से पृथ्वी भर गई, इन्होनें अनेक बार मानव रक्त से धरती को सींचा, सभ्यता नष्ट कर डाली तथा समस्त जातियों को हताश कर डाला । यदि यह सब न होता, तो मानव समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता । पर अब उनका भी समय आ गया है, और मैं पूर्ण आशा करता हूँ कि जो घण्टे आज सुबह इस सभा के सम्मान के लिए बजाये गये हैं वे समस्त कट्टरताओं, तलवार या लेखनी के बल पर किये जाने वाले समस्त अत्याचारों तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होन वाले मानवों की परस्परिक कटुआतों के लिए मृत्यु–नाद ही सिद्ध होगें ।'' स्वामी जी के इस भाषण में वैश्विक एकता, समरसता, समावेशी विकास, सामाजिक सद्भाव एवं सौहार्द समाया हुआ है ।

समाज का दर्पण कहे जाने वाले साहित्य का जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता अतः सदैव उत्कृष्ट कोटि का साहित्य पढ़ा जाना चाहिए । समावेशी विकास की बात की जाये अथवा सामाजिक सद्भावना की बात की जाये, इसे बनाने और बिगाड़ने में मीडिया की भी अहम भूमिका होती है । मीडिया को चाहिए कि उच्च आदर्श प्रस्तुत करने वाले महान लोगों की कहानियां, उनके विचारों एवं ऐसी घटनाओं को आम लोगों तक पहुंचाये और देश एवं समाज में दरार एवं तनाव पैदा करने वालों की ऐसी घटनाओं को बड़े सावधानी व चतुरतापूर्ण तरीके से प्रस्तुत किया जाये जिससे अनावश्यक टकराव को रोका जा सके, अफवाहो से बचें एवं मसालेदार खबर परोसने के स्थान पर संयमित एवं महत्वपूर्ण खबरें उपलब्ध करवायी जाये ।

देश के विभिन्न हिस्सों में दलित, दमित, आदिवासी, वंचित अन्य पिछड़ी जातियों, अल्पसंख्यकों एवं महिलाओं के साथ जघन्य अपराध की घटनाऐं सामने आती रही है, परन्तु शासन–प्रशासन समस्या की तह तक जाये बिना ही एक तरफा निर्णय लेकर इतिश्री करता रहा है । जिससे वे समस्त समस्याएं एवं चुनौतियां निरन्तर बनी रहती है । ऐसे में आवश्यकता है जनसहभागिता के माध्यम से यथार्थता को जानकर नीतियां एवं निर्णय लिये जायें । देश में अस्थिरता एवं तनाव पैदा करने वाले लोगों, समूहों, ताकतों की पहचान की जानी चाहिए और देश की एकता, अखण्डता, अमन–चैन को चोट पहुंचाने वालों का पता लगाकर कठोर दण्ड का प्रावधान किया जाना चाहिए । सामाजिक न्याय की सुनिश्चितता के लिए विकास में अन्तिम व्यक्ति को भी शामिल किया जाना चाहिए । सामाजिक सद्भाव एवं सौहार्द के साथ समावेशी विकास के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति, ईमानदारी, सादगीपूर्ण, व्यापक एवं दूर दृष्टिकोण, निस्वार्थ, उच्च एवं आदर्श विचारशीलता, पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, जवाबदेयता, नैतिकता एवं सच्चरित्रता के साथ आगे बढ़ने की आवश्यकता है तभी हम सैद्धान्तिकता के साथ–साथ व्यावहारिकता में भी लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को धरातल पर परखने में सक्षम हो सकेगें ।

❐

सन्दर्भ –

1. *पृथ्वीसिंह एवं हरि भगवान, सामाजिक सौहार्द व अन्तर्राष्ट्रीय वैश्विक मैत्री, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2013*
2. *डॉ. प्रकाश आतुर, राष्ट्रीय एकता और रचनाधर्मिता, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, 1989*
3. *डॉ, प्रकाश आतुर, साहित्य के सामयिक प्रश्न, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, 1984*
4. *डॉ. जनकसिंह मीन, लोक प्रशासन, सामाजिक वंचना एवं समावेशी विकास, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नईदिल्ली, वर्ष–6, अंक–1, जनवरी–जून, 2014*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 83–84, अक्टूबर,2015–मार्च,2016 पृ. 62–70 **ISSN 0974 -1100**

डॉ. अम्बेडकर का जातिविहीन समता मूलक समाज एवं आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक न्याय

डॉ. हरिकृष्ण बड़ोदिया

डॉ. अम्बेड़कर दलितों के सामाजिक उत्थान के लिए जाने, जाने वाले ऐसे विचारक थे, जिन्होंने भारतीय सामाजिक व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन के प्रयत्नों के लिये भारतीय लोकतंत्र में कभी न बुझने वाली ज्योति जलाई डॉ. अम्बेडकर का परिचय शताब्दियों से हिन्दुओं, विशेषतः उच्च वर्ण के हाथों अपमानित होने वाले दलित वर्ग के उद्धारक के रूप में दिया जा सकता है, उन्होंने दलित समुदाय को तिरस्कार ओर अधीनता के दल–दल से उबारा जिसमें धर्मान्ध, धर्म के ठेकेदारों ने उन्हें फंसा दिया था । वस्तुतः वे एक सामाजिक क्रान्तिकारी थे । वे ऐसे समाज सुधारक थे, जिन्होंने दलित, पतित, अस्पृश्य, पुरातनपंथी, मतान्ध और कट्टर जातिवादी के विरूद्ध संघर्ष किया । उन्होंने जाति प्रथा का प्रबल विरोध किया और अस्पृश्यता, जो हिन्दू समाज के मौलिक गठन को आद्यात पहुंचा रही थी, उसके विरूद्ध खड़े हुए ।

आर्थिक विचार

डॉ. भीमराव अम्बेडकर मूलतः एक अर्थशास्त्री थे परन्तु सामजिक विषमताओं, दलितों के शोषण, अस्पृश्यता तथा अन्याय की भयावह स्थितियों के चिन्तन–मनन ने उन्हें एक समाजशास्त्री के रूप में स्थापित किया । आर्थिक विचारों के अन्तर्गत उकने कृषि भूमि सुधार, वित्तीय विकेन्द्रिकरण, भारतीय मुद्रा की समस्याओं, औधोगीकरण, बीमा और श्रम की समस्याएँ, प्रजातंत्र और मद्य निषेद्य सम्बन्धी विचार महत्वपूर्ण है ।

डॉ. अम्बेडकर ने कृषि सुधार के संबंध में 1918 में भारत में छोटी जोतं और उनका उपचार (स्माल होल्डिंग्स इन इंडिया एण्ड देयर रेमेडीज) शीर्षक से एक विचारोत्तेजक लेख लिखा । जिसमें उन्होंने कृषि का महत्व, भारत में छोटी जोतें, चकबंदी, जोत के आकार को बढ़ाना और उपचार की योजना प्रस्तुत की ।

डॉ. अम्बेडकर कृषि को प्राथमिक उद्योग मानते थे । 'प्राथमिक उद्योगों का सम्बन्ध पृथ्वी, मिट्टी या जल में से उपयोगी पदार्थ निकालना है और यह शिकार, मछली पकड़ना, पशु पालन, लकड़ी चीरना और खनन का रूप ले सकता है ।'' ये उद्योग महत्वूपर्ण है, क्यों कि वे भौतिक विश्व से उन उपयोगी पदार्थों को निकालते हैं, जो मनुष्य के जीवित रहने के लिए मूल स्त्रोत बन जाते है और द्वितीय उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं । राष्ट्रीय दृष्टिकोण से प्राथमिक उद्योगों का महत्व निर्विवाद है । उन सब में खेती अधिक महत्वूपर्ण है । यह सबसे प्राचीन और सभी के लिए आवश्यक उद्योग है ।

डॉ. अम्बेडकर कृषि को समाज के आर्थिक ढाँचे की रचना, वर्ण, जाति एवं जजमानी से संबंधित नियमों पर आधारित मानते हैं । इन नियमों के तहत व्यक्ति को अपनी योग्यता व रूचि के अनुसार व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता नहीं हेाती और न ही वह व्यवसाय बदल सकता है । व्यक्ति का व्यवसाय जन्म से निश्चित होता है । व्यक्ति अपने पिता या जाति का ही व्यवसाय अपना सकता है । उनके अनुसार जाति व्यवस्था जनित आर्थिक भेद अन्यायपूर्ण हैं, क्योंकि जातियों के बीच पेशे के विभाजन में भेदभाव व पक्षपात बरता गया । उच्च जातियों के पास प्रतिष्ठित व लाभकारी व्यवसाय हैं, जबकि नींच जातियों को हीन व अलाभकारी व्यवसाया मिले । वर्ण एवं जाति के आधार पर समाज में एक ओर तो ऐसे वर्ग हैं जो उत्पादन प्रक्रिया में प्रत्यक्षतः कोई भाग नहीं लेते और न किसी प्रकार का सामाजिक श्रम करते हैं, दूसरी तरफ सवर्णों की सेवा करने वाला वर्ग अधिक से अधिक श्रम तो करता है पर उसके भाग्य में कम से कम इतना पारिश्रमिक भी नहीं मिलता कि वह सम्मानपूर्वक अपना जीवन निर्वाह कर सके । दलित वर्ग को न केवल उच्च वर्गों के व्यवसायों से दूर रखा गया बल्कि उनकी सेवाओं और उनके द्वारा बनाई गई वस्तुओं के मूल्य भी बाजार में दलित ही रहे ।

डॉ. अम्बेडकर की मान्यता है कि जनतंत्र की आत्मा 'एक मनुष्य, एक मूल्य' के सिद्धान्त में निहित है, लेकिन दुर्भाग्य से जनतांत्रिक राजनैतिक ढांचे ने 'एक मनुष्य–एक वोट' के सिद्धान्त को अपना रखा है । यदि जनतंत्र को प्रभावकारी बनाना है तो 'एक मनुष्य, एक मूल्य' के सिद्धान्त को अपनाना चाहिए । अम्बेडकर की राज्य, समाजवाद संबंधी योजना की मूल व्यवस्थाऐं इस प्रकार थी –

1. सभी मूलभूत उद्योग अथवा जिन्हें इस रूप में घोषित किया जा सकता है, राज्य स्वामित्व के अधीन हों, और उन्हें राज्य द्वारा चलाया जाये ।
2. वे सभी उद्योग जो मूलभूत नहीं हैं, किन्तु बुनियादी हैं, राज्य के अधीन हों, और उन्हें राज्य द्वारा अथवा राज्य स्थापित निगमों द्वारा संचालित किया जाये ।
3. बीमा पर राज्य का अधिकार हो ।
4. कृषि, राज्य उद्योग हो । कृषि फार्म बनाये जायें । राज्य इन फार्मों पर खेती के लिये आवश्यक सुविधा–पानी, बीज, खाद, औजार आदि उपलब्ध कराने में काश्तकारों की मदद करें । फार्मों पर खेती सामूहिक हो । मालगुजारी तथा उत्पादन व्यय में की गई मदद आदि की वापसी के बाद कृषि से जो लाभ हो, उसे काश्तकार परिवारों को नियमानुसार विभाजित कर दिया जाये ।
5. राज्य को यह अधिकार हो कि इन उद्योगों, बीमा और कृषि भूमि को निजी व्यक्तियों से चाहे वे उसके स्वामी, आसामी अथवा बंधककार हों, उन्हें भूमि के अधिकार के अनुसार नियम पत्र के रूप क्षतिपूर्ति का भुगतान कर अपने अधिकार में ले सकें ।

अम्बेडकर कृषि को राज्य उद्योग के रूप में विकसित करना चाहते थे । उन्होंने कृषि उद्योग का सामूहिक कृषि के रूप में संचालित करने हेतु आवश्यक संवैधानिक व्यवस्था की सिफारिश की । डॉ. अम्बेडकर देश की औद्योगिक प्रगति की दृष्टि से राज्य समाजवाद की आवश्यकता पर बल देते थे । उनके मत में निजी क्षेत्र से औद्योगिक प्रगति संभव नहीं ।

डॉ. अम्बेडकर ने देश में श्रमिकों की समस्याओं के निराकरण हेतु उन्हें सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने तथा उनके कल्याण के लिये अनेक महत्वपूर्ण कार्य

किये । उद्योगों, कारखानों तथा खदानों में कार्यरत श्रमिकों की मजदूरी में वृद्धि, कार्य की दशाओं में सुधार, संवैधानिक अवकाश तथा कार्य के घंटो में कमी आदि की दृष्टि से प्रचलित श्रम सन्नियमों में आवश्यक संशोधन किये ।

डॉ. अम्बेडकर का लक्ष्य था कि राजनैतिक अधिकारों के साथ–साथ बुनियादी, सामाजिक एवं आर्थिक विषयों में सभी लोगों को स्वतंत्रता एवं समनता प्राप्त हो, कमजोर वर्गों को अन्य लोगों की बराबरी में उठाने के लिए विशेष। संरक्षण एवं सुविधा की व्यवस्था हो । उसके मत में यदि संविधान के द्वारा कोई आर्थिक ढाँचा थोप दिया जाता है, तो कालान्तर में अनुपयोगी होने पर उसे हटाना आसान नहीं होगा । यही कारण था कि देश के आर्थिक ढाँचे की रचना निश्चित अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त के आधार पर की गई, जिसके अन्तर्गत जो उद्यम निजी क्षेत्र में प्रभावकारी ढंग से चल सकते हैं, वे निजी क्षेत्र में रखे गये और बड़े उद्योग जिनका निजी क्षेत्र में आयोजन कठिन है, सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत संगठित किये गये ।

वस्तुतः ये मिश्रित आर्थिक ढाँचा मुख्यरूप से दो संवैधानिक प्रावधानों पर आधारित है । एक है भौतिक अधिकार और दूसरा है नीति–निर्देशक सिद्धान्त । भौतिक अधिकार जहाँ. व्यक्तिक स्वतंत्रता के माध्यम से आर्थिक क्षेत्र में निजी प्रयासों के लिये अवसर प्रदान करते हैं, वहीं नीति–निर्देशक सिद्धान्त राज्य के लिये धन न्यायोचित वितरण, जीविका और रोजगार के पर्याप्त साधन की व्यवस्था तथा समाज कार्य के लिये समान वेतन आदि का लक्ष्य निर्धारित करके, सार्वजनिक क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों का मार्ग प्रशस्त करते हैं ।

इसी सिद्धान्त के आधार पर संविधान में मौलिक अधिकार के रूप में व्यक्ति को अवसर की समानता, पेशा चुनने की स्वतंत्रता एवं अधिकारों के आर्थिक ढाँचे के परम्परागत जाति आधार को नष्ट कर दिया है ।

राजनीति विचार

उनका मत था कि जातिवाद पर आधारित हिन्दू समाज, शोषण तथा असमानता के स्तरीकरण का कारण बनता है । वर्ण–व्यवस्था के कारण अस्पृश्यों का एक वर्ग सामने उभर कर आता है, जिसके विरूद्ध स्पर्श वर्ग क्रुरूरतापूर्ण व्यवहार करता है । वे मानते है कि परम्परागत धर्म का प्रचण्ड विरोध और

मनुस्मृति जैसे ग्रन्थों को जलाने से अस्पृश्यों की स्थिति में, और अन्ततोगत्वा भारतीय समाज में सुधार लाया जा सकता है । डॉ. अम्बेडकर हिन्दू धर्म के विरोधी नहीं थे उनके आक्रोश के केन्द्र वे व्यक्ति थे जो धर्म की इतनी भ्रान्तिपूर्ण व्याख्या करते थे, जिससे हिन्दुओं के एक वर्ग को दूसरे वर्ग को अपमानित करने का अधिकार मिल गया । उनका मानना था कि हिन्दू धर्म में सदा ही समानता के विचार की बलि दी गई । यही कारण था कि उन्होंने अपने जीवन की अंतिम अवस्था में बौद्ध धर्म की दिक्षा ली जो समानता, मानववाद, करूणा और भ्रातृत्व का पोषक है । उनका मानना था कि अस्पृश्यों, शूद्रों के साथ मानवीय व्यवहार नहीं किया जाता है । इस प्रकार जातिवाद हिन्दू धर्म पर एक कलंक था । इसे दूर किया जाना चाहिए । उनकी दो कृतियों 'जातिभेद का विनाश और 'व्हाट डीड गांधी एण्ड कांग्रेस डू फॉर अन्टचेब्लस्' में जातिवाद के दोषों को अनावृत्त किया गया और इसे समाप्त कर देने का आग्रह किया गया ।

जातिवाद के जिन दोषों पर अपनी पुस्तक में प्रकाश डाला वे इस प्रकार है –

1. जातिवाद के कारण हिन्दुओं का विनाश हुआ । यह उनकी अवनति का कारण है ।

2. चार वर्णों के आधार पर हिन्दू जाति का संगठन असम्भव है, क्योंकि इससे शोषक को बढ़ावा मिलता है ।

3. हिन्दू समाज का ऐसा संगठन हानिकारक है, क्योंकि शिक्षा प्राप्ति तथा सशस्त्र प्रशिक्षण के अधिकार से वंचित कर इससे उनके मनोबल का ह्रास होता है ।

4. जातिवाद पर आधारित समाज में स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के सिद्वान्त को कोई प्रश्रय नहीं होता ।

5. उन्होंने कहा था– ''जाति प्रथा ने हिन्दू वंश का नाश किया है । हिन्दू समाज को गहन अन्धकार में डाल दिया है, और यह एक असक्त दुर्बल समाज बन कर रह गया है ।''

उनका विश्वास था कि भारत में शान्ति तथा राष्ट्रीय अखण्डता जातिवाद की समाप्ति पर ही सम्भव है । उनके अनुसार जातिवाद का स्त्रोत पवित्र शास्त्रों

में भी ढूंढा जा सकता है । अतः उन्होंने प्रत्येक पुरूष तथा स्त्री से अनुरोध किया कि वह शास्त्रों के प्रभाव से अपने आप को मुक्त रखें, उनकी दिव्यता के प्रति अपनी आस्था त्याग दें, जिससे जातिवाद से मुक्त हुआ जा सके । उन्होंने अस्पृश्यों से ऐसे कर्म न करने की प्ररेणा दी जो उन्हें अस्पर्श बनाते हैं । उनका मानना था कि अपनी हीनता की ग्रंथी से उभर जाने के पश्चात अस्पृश्य लोग सवर्ण लोगों के समकक्ष ही अपने को पायेगें ।

इस प्रकार उक्त विचार जातिप्रथा के उन्मूलन में सहायक सिद्ध हुवे । यद्यपि आज जातिप्रथा समूल नष्ट नहीं हुई, परन्तु उसके आधार पर होने वाली छूआ–छूत का शमन जरूर हुआ है ।

गाँधी जी के साप्ताहीक पत्र ''हरिजन'' के प्रथम अंक को भेजे अपने संदेश में उन्होंने लिखा कि ''जातिप्रथा की ही उपज है । जब तक जातिप्रथा है, तब तक जाति युक्त व्यक्ति रहेगें । इस प्रथा के रहते जाति बहिष्कृत लोगों की मुक्ति असंभव है । इस प्रथा को नष्ट कर ही उनका प्रण सुनिश्चित कर सकते हैं ।

अस्पृश्यों के उत्थान के लिये उन्होंने 20 जुलाई, 1924 को बम्बई में ''बहिष्कृतहितकारिणी सभा'' की स्थापना की जिसके उदद्ेश्यों में 1–दलितों को शिक्षित करने के लिये आवासों की व्यवस्था करना, 2–सांस्कृतिक विकास के लिये वाचनालय और अध्यात्मिक केन्द्र की स्थापना करना, 3–आर्थिक विकास के लिये औद्योगिक और कृषि विद्यालयों को खोलना, 4–अस्पृश्यता उन्मूलन के लिये आन्दोलन छेड़ना, 5– उच्चवर्ण की विद्यमानता की बुरी प्रथा को दूर करना आदि प्रमुख थे ।

अस्पृश्यता निवारण और जाति–प्रथा की समाप्ति के परिणाम स्वरूप सामाजिक न्याय के नये युग का सूत्रपात हुआ । संविधान बनाने वाली समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने सामाजिक आर्थिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में सामान्यजनों की आकंक्षाओं को उचित महत्व दिया ।

डॉ. अम्बेडकर सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समानता के पक्षधर थे । अतः वे महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार के स्तरीकरण के विरूद्ध प्रभावी रक्षा उपाय चाहते थे । इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होंने हिन्दू कोड बिल प्रस्तुत किया जिसके मूलभूत चार उद्देश्य थे ।

1. जन्म पर आधारित अधिकार–परक सिद्धान्त को समाप्त किया जाये ।
2. सम्पत्ति पर स्त्रियों को पूर्ण अधिकार हो ।
3. पिता की सम्पत्ति में स्त्री का अधिकार हो ।
4. विवाह–विच्छेद के लिये प्रावधान ।

वर्तमान हिन्दू कानून सभी हिन्दुओं पर पूर्णतः लागू नहीं था तथा यह संविधान के अनुरूप नहीं है । उन्होंने कहा था– ''हिन्दू कोड को अधिनियमित कर देने से हिन्दू कानून संविधान के अनुरूप हो जायेगा ।''

इस प्रकार वे स्त्रियों के अधिकारों के प्रति जागरूक और असाधारण समाज सुधार के रूप में जाने जाते हैं । ''स्त्रियों को समानाधिकार के लिये उनकी सुदृढ़ प्रतिबद्धता में हमारे संविधान पर अपनी छाप छोड़ी है ।'' व्यापक मताधिकार पर उनके द्वारा बल दिया जाना, उनकी जनतांत्रिक चेतना और लिंगों के आधार पर पूर्ण समानता की उनकी आंतरिक उत्प्रेरणा का प्रमाण है ।

डॉ. अम्बेडकर सामान्यतः मानवाधिकारों के पक्षधर थे । वे राज्य को ऐसा संगठन मानते थे जिसके उद्देश्य क्रमशः 1–प्रत्येक नागरिक को जीवन, स्वतंत्रता, प्रसन्नता की खोज, वाणी और धर्म की स्वतंत्रता सुनिश्चित करना । 2–दलित वर्ग को उत्थान के अवसर प्रदान कर राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक असमानता दूर करना और सभी नागरिकों को अभाव और भय से मुक्ति प्रदान करना थे ।

उनकी दृष्टि में वास्तविक स्वतंत्रता मात्र राजनैतिक नहीं होती, वह सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक और अध्यात्मिक भी होनी चाहिए । उन्होंने राज्य की केन्द्रीय सत्ता के व्यक्तिगत स्वतंत्रता से संपृक्त होने का सुझाव दिया । इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर मानव अधिकारों के प्रबल पक्षधर थे । ''जाति, वृत्ति, मत, लिंग तथा अन्य किसी भी आधार पर बिना भेदभाव किये यह सुनिश्चित करना कि सभी कानून की दृष्टि में समान है, सभी को उसकी सुरक्षा समान रूप से प्राप्त है–उनके लिये कानून का सार था । उनके मत में कानून स्वतंत्रता और समानता का प्रहरी है । सभी को बिना जाति, वर्ण और वृत्ति के भेदभाव के यह सीमा में रखता है । उन्होंने कहा था – ''कानून ने मुनष्य को नहीं बनाया, वरन् मनुष्य ने स्वंय कानून को अपनी प्रसन्नता के लिये बनाया है ।'' उन्होंने इस बात पर बल दिया कि ''कानून सामाजिक और मानवीय हो तथा इस का प्रभाव व्यापक हो ।''

सामाजिक न्याय

डॉ. अम्बेडकर फ्रेंच दार्शनिक रूसों के तीन शब्दों समानता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व से अत्यन्त प्रभावित थे । समानता पर आधारित न्याय की अवधारणा को उन्होंने स्वीकारा । सामाजिक न्याय, न्यास संबंधी अवधारणा का एक आयाम है जो समाज के गठन को स्वतंत्रता, समानता तथा पद्धति के पक्ष में है, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य के मनुष्य से सम्बन्धों पर आधारित है, क्योंकि दलित वर्ग पर अन्याय की निरन्तरता का कारण हिन्दू धर्म तथा नैतिकता से सम्बद्ध अवधारणा से निकटतः सम्बद्ध थे । धर्म सम्बन्धी उनकी मान्यता तर्क संगत, मानवतावादी और करूणामयी है । यह इसमें विश्वास करने वालों को समानता के स्तर पर रखकर समानता का व्यवहार करती है । उनके मत में ऐसा धर्म जो अनुयायियों के प्रति दुर्व्यवहार करता है, और असहाय वंचनाओं से जोड़ता है, कोई धर्म नहीं है । वे हिन्दू धर्म से पूर्णतः असंतुष्ट थे क्योंकि धर्म सामाजिक एकता के सिद्धान्त का पोषण नहीं करता था, इसके विपरीत भेदभावपूर्ण व्यवहार के द्वारा सामाजिक पृथकता को उकसाता था । वे जातिवाद का अस्पृश्यता का मूल कारण मानते थे । अस्पृश्यता, हिन्दू धर्म की घृणितम विकृति थी । चार वर्णों की अवधारणा, असमानता का मूल कारण रहा । इसीलिये वे हिन्दू धर्म को चातुवर्ण से मुक्त करना चाहते थे, जिससे इसके अन्तर्गत सभी लोगों का समावेश हो और सामाजिक एकता स्थापित की जा सकें ।

डॉ. अम्बेडकर को मनुष्य तथा उसमें छिपी शक्तियों में उनकी गहन आस्था थी । इन्हीं निहित शक्तियों के आधार पर मनुष्य अपने कष्टों को दूर कर सकता था, अपनी दरिद्रता, दासताजन्य कष्टों को कम कर सकता था । उन्होंने कहा – 'आप स्वयं अपनी दासता से अपने को मुक्त कर सकते हैं । इसे दूर करने के लिए आप परमात्मा अथवा किसी अन्य विलक्षण पुरूष पर निर्भर ना रहें । जितनी जल्दी आप इस भ्रान्ति से अपने को मुक्त कर पायेंगे कि आपके कष्ट पूर्व निर्दिष्ट हैं, उतना ही आपके लिये श्रेयस्कर होगा । भाग्य पर नहीं, अपनी शक्ति पर भरोसा कीजिए ।'

इस प्रकार डॉ. भीमराव अम्बेडकर अपने विचारों में पूरी तरह स्पष्ट थे । वे हिन्दू सामाजिक संरचना जिसका आधार वह त्रुटिपूर्ण हिन्दू धर्म था, जो मनुष्य के स्तर पर निम्न अथवा उच्च वर्ग में, उनके जन्म के आधार पर निर्धारित करता

है, को पुनर्गठित करने को अति उत्सुक थे । वे एसी सामाजिक व्यवस्था के पक्षधर थे, जिस पर मानव जीवन का आधार, स्वतंत्रता, समानता और सौहार्द पर हो । वे एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहते थे, जिसमें एक ही स्वतंत्रता का अर्थ, दूसरे की दासता न हो । उनहोंने सामाजिक समानता और सामाजिक न्याय के लिये संघर्ष किया, जिसके कारण हिन्दू समाज संगठित रह सकता था ।

❐

सन्दर्भ –

1. *पवन कुमार, भारतीय राजनीतिक विचारक, आमेगा पब्लिकेशन, नईदिल्ली–2006*
2. *रामगोपाल सिंह, डॉ. अम्बेडकर का विचार दर्शन, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2002*
3. *डॉ. विष्णुदत्त नागर एवं डॉ. कृष्ण वल्लभ नागर, डॉ. अम्बेडकर के आर्थिक विचार और नीतियाँ, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1995*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 83–84, अक्टूबर,2015–मार्च,2016 पृ. 71–76 ***ISSN 0974 -1100***

जातिविहीन समाज और राष्ट्र का सशक्तीकरण, डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में

श्रीमती प्रतिभा नामदेव

डॉ. अम्बेडकर का पूरा संघर्ष हिन्दू समाज और राष्ट्र के सशक्तीकरण का ही था । डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन और दृष्टि को समझने के लिए यह ध्यान रखना जरूरी है कि वे अपने चिन्तन में कही भी दुराग्रही नहीं है । उनके चिंतन में जड़ता नहीं है । अम्बेडकर का दर्शन समाज को गतिमान बनाए रखने का है । अम्बेडकर मानते थे कि समानता के बिना समाज ऐसा है जैसे बिना हथियारों के सेना । समानता को समाज के स्थाई निर्माण के लिये धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक क्षेत्र में तथा अन्य क्षेत्रों में लागू करना आवश्यक है । अम्बेडकर हिंदू समाज में सामाजिक बदलाव के वाहक थे ।

भारत के सर्वांगीण विकास और राष्ट्रीय पुनरूत्थान के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण विषय हिंदू समाज का सुधार एवं आत्म उद्धार है । श्रीमद्भगवद् गीता में इस विचार पर जोद दिया गया है कि व्यक्ति की महानता उसके कर्म से सुनिश्चित होती है न कि जन्म से । इसके बावजूद अनेक इतिहासिक कारणों से इसमें आई नकारात्मक बुराईयाँ ऊँच–नींच की अवधारणा, कुछ जातियों को अछूत समझने की आदत इसका सबसे बड़ा दोष रहा है । यह अनेक सहस्राब्दियों से हिंदू धर्म के जीवन का मार्गदर्शन करने वाले आध्यात्मिक सिद्धांतों के भी प्रतिकूल है ।

हिंदू समाज ने अपने मूलभूत सिद्धांतों का पुनः पता लगाकर समय–समय पर आत्म सुधार की ईच्छा एवं क्षमता दर्शाई है । सैकड़ों सालों से वास्तव में इस

दिशा में प्रगति हुई है । इसका श्रेय आधुनिक काल के सतों एवं समाज सुधारकों स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, राजा राममोहन राय, महात्मा ज्योतिबा फुले एवं उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले, नारायण गुरू, गांधी जी और बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर को जाता है । इस संदर्भ में राष्ट्रीय स्वंय सेवके संघ के तीसरे सरसंघचालक बालासाहब देवसर कहते थे कि 'यदि अस्पृश्यता पाप नही है तो इस संसार में अन्य दूसरा कोई पाप ही नहीं हो सकता । वर्तमान दलित समुदाय जो अभी भी हिंदू है अधिकांश उन्हीं साहसी ब्राम्हणों व क्षत्रियों के ही वंशज है, जिन्होंने जाति से बाहर होना स्वीकार किया, किन्तु विदेशी शासकों द्वारा जबरन धर्म परितर्वन स्वीकार नहीं किया । आज के हिंदू समुदाय को उनका शुक्रगुजार होना चाहिए कि उन्होंने हिंदुत्व को नीचा दिखाने की जगह खुद नीचा होना स्वीकार कर लिया ।

हिंदू समाज के इस सशक्तीकरण की यात्रा को डॉ. अम्बेडकर ने आगे बढ़ाया, उनका दृष्टिकोण न तो संकुचित था और न ही वे पक्षपाती थे । दलितों को सशक्त करने और उन्हें शिक्षित करने का उनका अभियान एक तरह से हिंदू समाज और राष्ट्र को सशक्त करने का अभियान था । उनके द्वारा उठाए गए सवाल जितने उस समय प्रासंगिक थे, आज भी उतने ही प्रासंगिक है कि अगर समाजका एक बड़ा हिस्सा शक्तिहीन और अशिक्षित रहेगा तो हिंदू समाज और राष्ट्र सशक्त कैसे हो सकता है ?

वे बार–बार सवर्ण हिन्दुओं से आग्रह कर रहे थे कि विषमता की दिवारों को गिराओं, तभी हिंदू समाज शक्तिशाली बनेगा । डॉ. अम्बेडकर का मत था कि जहां सभी क्षेत्रों में अन्याय, शोषण एवं उत्पीड़न होगा, वहीं सामाजिक न्याय की धारणा जन्म लेगी । आशा के अनुरूप उत्तर न मिलने पर उन्होंने 1935 में नासिक में यह घोषणा की, वे हिन्दू नहीं रहेंगे । अंग्रेजी सरकार ने भले ही दलित समाज को कुछ कानूनी अधिकार दिए थे, लेकिन अम्बेडकर जानते थे कि यह समस्या कानून की समस्या नहीं है । यह हिंदू समाज के भीतर की समस्या है और इसे हिंदुओं को ही सुलझाना होगा । वे समाज के विभिन्न वर्गों को आपस में जोड़ने का कार्य कर रहे थे ।

अम्बेडकर ने भले ही हिंदू न रहने की घोषणा कर दी थी । ईसाइयत या इस्लाम से खुला निमंत्रण मिलने क बावजूद उन्होंने इन विदेशी धर्मों में जाना उचित नहीं माना । इसके लिए हम ईसाई या इस्लाम मत के प्रचारकों को दोष नहीं दे सकते क्योंकि वे अपने धर्म का पालन करते हैं और उनकी मानसिकता जगजाहिर है । लेकिन डॉ. अम्बेडकर इस्लाम और ईसाइयत ग्रहण करने वाले दलितों की दुर्दशा को जानते थे । उनका मत था कि धर्मांतरण से राष्ट्र को नुकसान उठाना पड़ता है । विदेशी धर्मों को अपनाने से व्यक्ति अपने देश की परंपरा से टूटता है ।

उन्होंने केवल दलित उत्थान के लिए कार्य किया यह सही नहीं होगा । मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि उन्होंने भारत की आत्मा हिंदूत्व के लिए कार्य किया । जब हिंदूओं के लिए एक विधि संहिता बनाने का प्रसंग आया तो सबसे बड़ा सवाल हिंदू को पारिभाषित करने का था । डॉ. अम्बेडकर ने अपनी दूरदृष्टि से इसे पारिभाषित किया कि मुसलमान, ईसाई, यहूदी और पारसी को छोड़कर इस देश के सब नागरिक हिंदू है, अर्थात विदेशी उद्‌गम के धर्मों को मानने वाले अहिंदू है, बाकी सब हिंदू है । उन्होंने इस परिभाषा से देश की आधारभूत एकता का अद्‌भूत उदाहरण पेश किया है ।

अम्बेडकर की आर्थिक दृष्टि और वर्तमान में उसकी प्रासंगिता

अम्बेडकर का सपना भारत को महान, सशक्त और स्वावलंबी बनाने का था । डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में प्रजातंत्र व्यवस्था सर्वोत्तम व्यवस्था है, जिसमें एक मानव एक मूल्य का विचार है । सामाजिक व्यवस्था में हर व्यक्ति का अपना–अपना योगदान है, पर राजनीतिक दृष्टि से यह योगदान तभी संभव है जब समाज और विचार दोनों प्रजातांत्रिक हों । आर्थिक कल्याण के लिए आर्थिक दृष्टि से भी प्रजातंत्र जरूरी है । आज लोकतांत्रिक और आधुनिक दिखाई देने वाला देश, अम्बेडकर के संविधान सभा में किये गए सत्त वैचारिक संघर्ष और उनके व्यापक दृष्टिकोण का नतीजा है, जो उनकी देख–रेख में बनाए गए संविधान में क्रियान्वित हुआ है, लेकिन फिर भी संविधान वैसा नहीं बन पाया जैसा अम्बेडकर चाहते थे, इसलिए वह इस संविधान से खुश नहीं थे । आखिर अम्बेडकर आजाद भारत के लिए कैसा संविधान चाहते थे ?

शिक्षा, रोजगार और आरक्षण

अम्बेडकर चाहते थे कि देश के हर बच्चे को एक समान, अनिवार्य और मुफ्त शिक्षा मिलनी चाहिए, चाहे वह किसी भी जाति, धर्म या वर्ग का क्यों न हो । वे संविधान में शिक्षा को मौलिक अधिकार बनवाना चाहते थे । देश की आधी से ज्यादा आबादी बदहाली, गरीबी और भूखमरी की रेखा पर अमानवीय और असांस्कृतिक जीवन जीने को अभिशप्त है । इस आबादी की आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए ही अम्बेडकर ने रोजगार के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाने की वकालात की थी । संविधान में मौलिक अधिकार न बन पाने के कारण 20 करोड़ से भी ज्यादा लोग बेरोजगारी की मार झेल रहे हैं बाबा साहब ने दलित वर्गों के लिए शिक्षा और रोजगार में आरक्षण दिए जाने की वकालात की थी ताकि उन्हें दूसरों की तरह बराबर के मौके मिल सकें । अगर शिक्षा, रोजगार और आवास को मौलिक अधिकार बना दिया जाता तो उन्हें आरक्षण की वकालात की शायद जरूरत ही न होती ।

डॉ. अम्बेडकर प्रजातांत्रिक सरकारों की कमी से परिचित थे, इसलिए उन्होंने साधारण कानून की बजाय संवैधानिक कानून को महत्व दिया । वर्तमान में हम देख रहे हैं कि किस प्रकार सरकारें अपने स्वार्थ और वोट बैंक के लिए कानूनों की मनमानी व्याख्या करना चाहती है । मजदूर अधिकारों पर अम्बेडकर का मानना था कि वर्ण व्यवस्था केवल श्रम का ही विभाजन नहीं है, यह श्रमिकों का भी विभाजन है । दलितों को भी मजदूर वर्ग के रूप में एकत्रित होना चाहिए । मगर यह एकता मजदूरों के बीच जाति की खाई को मिटा कर ही हो सकती है । अम्बेडकर की यह सोच बेहद क्रांतिकारी है, क्योंकि यह भारतीय समाज की सामाजिक संरचना की सही और वास्तविक समझ की ओर ले जाने वाली कोशिश है ।

राजनीतिक सशक्तिकरण

अम्बेडकर भारतीय दलितों का राजनीतिक सशक्तीकरण चाहते थे । उसी का नतीजा है कि आज लोकसभा की 79 सीटें अनुसूचित जातियों के लिए और 41 सीटें अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित की गई है । सरकार ने संविधान संशोधन कर यह राजनीतिक आरक्षण 2026 तक कर दिया है ।

अम्बेडकर दूरदर्शी नेता थे उन्हें अहसास था कि इन समूहों को बराबरी का दर्जा पाने के लिए बहुत समय लगेगा, वे यह भी जानते थे कि सिर्फ आरक्षण सामाजिक न्याय सुनिश्चित नहीं किय जा सकता । हमने देखा है कि पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जेलसिंह, बाबू जगजीवन राम, मायावती आदि दलित–पिछड़े नेताओं पर किस तरह के जुमले और फिकरे गढ़े जाते रहे हैं ।

अम्बेडकर का पूरा जोर दलित–वंचित वर्गों में शिक्षा के प्रसार और राजनीतिक चेतना पर रहा है । आरक्षण उनके लिए एक सीमाबद्ध तरकीब थी । दुर्भाग्य से आज उनके अनुयायी इन बातों को भुला चुके हैं । बड़ा सवाल यह है कि स्वतंत्रता के 67 सालों में भी अगर भारतीय समाज इन दलित–आदिवासियों समूहों को आत्मसात नहीं कर पाया है, तो जरूरत है पूरे संवैधानिक प्रावधानों पर नई सोच के साथ देखने की, ताकि इन वर्गों को सामाजिक बराबरी के स्तर पर खड़ा किया जा सके । अम्बेडकर का मत था कि राष्ट्र व्यक्तियों से होता है, व्यक्ति के सुख और समृद्धि से राष्ट्र सुखी और समृद्ध बनता है । डॉ. अम्बेडकर के विचार से राष्ट्र एक भाव है, एक चेतना है, जिसका सबसे छोटा घटक व्यक्ति है और व्यक्ति को सुसंस्कृत तथा राष्ट्रीय जीवन से जुड़ा होना चाहिए । राष्ट्र को सर्वोपरि मानते हुए अम्बेडकर व्यक्ति को प्रगतिका केन्द्र बनाना चाहते थे । वह व्यक्ति को साध्य और राज्य को साधन मानते थे ।

डॉ. अम्बेडकर ने इस देश की सामाजिक–सांस्कृतिक वस्तुगत स्थिति का सही और साफ आंकलन किया है । उन्होंने कहाकि भारत में किसी भी आर्थिक–राजनीतिक क्रांति से पहले एक सामाजिक–सांस्कृतिक क्रांति की दरकार है । राष्ट्र को सशक्त और स्वावलंबी बनाने के लिए समाज की अंतिम सीढ़ी पर जो लोग है उनका सोशियो इकोनॉमिक डेवलपमेंट करना होगा । किसी भी राष्ट्र का विकास तभी अर्थपूर्ण हो सकता है जब भौतिक प्रगति के साथ–साथ आध्यात्मिक मूल्यों का भी संगम हो । जहां तक भारत की विशेषता, भारत का कलचर, भारत की संस्कृति का सवाल है तो यह विश्व की बेहतर संस्कृति है । भारतीय संस्कृति को समृद्ध और श्रेष्ठ बनाने में सबसे बड़ा योगदान दलित समाज के लोगों का है । इस देश में आदि कवि कहलाने का सम्मान केवल महर्षि वाल्मिकी को है, शास्त्रों के ज्ञाता का सम्मान वेदव्यास को है । भारतीय संविधान के निमार्ण का श्रेय अम्बेडकर को जाता है ।

डॉ. अम्बेडकर के पास भारतीय समाज का आंखों देखा अनुभव था, तीन हजार वर्षों की पीड़ा भी थी । इसलिए अम्बेडकर सहीं अर्थों में भारतीय समाज की उन गहरी वस्तुनिष्ठ सच्चाइयों को समझ पाते हैं । अम्बेडकर का सपना था कि समतामूलक समाज हो, शोषण मुक्त समाज हो, दरअसल आज उनका यही सपना सबसे ज्यादा प्रासंगिक है और इसी के कारण अम्बेडकर भी सबसे ज्यादा प्रासंगिक है । उनक समूचे जीवन और चिंतन के केन्द्र में यही एक सपना है । एक जातिविहीन, वर्गविहीन, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, लैंगिक और सांस्कृतिक विषमताओं से मुक्त समाज । ऐसा समाज बनाने के लिए हिंदू समाज का सशक्तीकरण सबसे पहली प्राथमिकता होगी । यही अम्बेडकर की सोच और संघर्ष का सार है । आज अम्बेडकर इस देश की संघर्षशील ओर परिवर्तनकारी समूहों के हर महत्वपूर्ण सवाल पर प्रासंगिक हो रहे हैं, इसी कारण वह विकास के लिए संघर्ष के प्रेरणा स्रोत भी बन गए है । मेरा मानना है कि हिंदुत्व के सहारे ही समाज में एक जन–जागरण शुरू किया जा सकता है जिसमें हिंदू अपने संकीण मतभेदों से ऊपर उठकर स्वंय को विराट–अखंड हिंदुस्तानी समाज के रूप में संगठित कर भारत को एक महान् राष्ट्र बना सकते हैं ।

❐

सन्दर्भ –

1. *श्री पी.एन. परमार, दलित चेतना के आधार स्तंभ गांधी, अम्बेडकर और बाबूजी, गांधी ग्रन्थ कुटीर, दिल्ली ।*
2. *हमारे प्रेरणा स्त्रोत–श्री हरिओम पालीवाल, अनुज पब्लिशिंग, मानक विद्या दिल्ली ।*
3. *श्री राजीव कर्दम, दलितों के मसीहा–डॉ. भीमराव अम्बेडकर, राधा पुस्तक केन्द्र, मानक विहार, दिल्ली ।*
4. *पाञजन्य–अप्रेल, 2015, भारत प्रकाशन लिमिटेड, संस्कृति भवन, देवबंधु गुप्ता मार्ग, झण्डेवाला, नईदिल्ली ।*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 83–84, अक्टूबर,2015–मार्च,2016 पृ. 77–87 ***ISSN 0974 -1100***

डॉ. अम्बेडकर, सामाजिक न्याय एवं जातिविहीन समतामूलक समाज

कपिलबाला पांचाल

'न्याय' शब्द से यदि हम प्रारंभ करते हैं, तब जो न्याय व्यवस्था तथागत गौतम बुद्ध के जन्म से पूर्व थी अर्थात 10,000 वर्ष पहले इस देश में विद्यमान थी उसके दर्शन आज 21 वीं सदी में दुर्लभ है । मानव प्रगति की तेज रफ्तार को हम 8000 हजार वर्ष से आंक सकते हैं । उस काल में जीविका को कमाना कष्टकर रहा है किन्तु कठिन नहीं मानव ने मानव से सहभागिता करके अपनी प्रगति के मार्ग को विस्तृत किया । उसने अपने कला कौशल में लगातार सुधार करके उसको विकसित किया । क्योंकि उस समय में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था । प्राकृतिक न्याय का बोलबाला था । न कोई भक्त था न कहीं कोई भगवान लोग प्रकृति के प्रकोप से डरते थे, आंधी तूफान वृक्षों का हिलना, गिरना हवा के थपेड़े, झोंके से डरना ही प्रकृति पूजा का मूल कारण था । नैतिकता और प्रकृति धर्म को अपनाते हुए सभी लोग आपसी सद्भाव से मिलजुलकर रहते थे । आगे चलकर उस काल के जन–जीवन को चार वर्गों में बांटा गया था । (1) विद्वान (2) योद्धा (3) व्यापारी (4) श्रम जीवी ।

कहीं किसी भी स्तर पर अन्याय अथवा छुआछूत की स्थिति नहीं थी । शोषक भी नहीं थे तो अन्याय अत्याचार का भी नामों निशान नहीं था । कारण हम वेदकाल के पूर्व की सिन्धु सभ्यता के विषय में पढ़ते हैं कि – 'सन् 1921 में श्री दयाराम साहनी द्वारा हड़प्पा स्थल पं. पंजाब पाकिस्तान की खोज से एक नयी सभ्यता की उत्पत्ति हुई जिसे पुरातत्ववेत्ताओं ने हड़प्पा सभ्यता नाम दिया, इस सभ्यता को सिन्धु घाटी की सभ्यता या सिन्धु सभ्यता भी कहा जाता है ।'

उस सभ्यता की खुदाई में कहीं भी जेलखाने, जंजीर अथा कोई यौद्धिक हथियार नहीं मिले हैं । अर्थात उस काल में भी सर्वत्र प्राकृतिक न्याय व्याप्त था ।

प्राचीन कालीन मानव समाज में लोक प्रकृति से ही भयभीत रहते थे । यदि कुछ गलत व्यवहार किया, असत्य भाषण किया या प्रकृति के नियमों के विरूद्ध आचरण किया तो प्रकृति अज्ञात शक्ति दण्डित करेगी । जैसे प्रकृति का नियम है कि माता अपने नवजात शिशु को अपना स्तनपान करवाये । यह शिशु का अधिकार है तो वहीं माता का शिशु के प्रति सामाजिक न्यायपूर्ण व्यवहार है । यदि माता अपने इस न्यायपूर्ण व्यवहार से विमुख होती है तो प्रकृति उसे दण्डित करेगी । उसके स्तनों में नवजात शिशु के लिये प्रकृति प्रदत्त दुग्ध संग्रहित है वह गठान के रूप में एकत्र होकर उस माता को सजा देगा (पीड़ा पहुँचायेगा) क्योंकि वह अपने शिशु के साथ प्रकृतिक न्याय नहीं करके अन्याय कर रही है ।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि मां–संतान स्वाभाविक रूप से भावना के साथ जुड़कर एक होते हैं । उसी प्रकार मानव का मानव के साथ मानव होने के कारण, एक समान शारीरिक अंग होने से, शरीर में एक समान शारीरिक अंग होने से, शरीर में एक समान रक्त का ही संचार होने की वजह से सभी शारीरिक एवं मानसिक इंद्रियों का एक समान संचरण होने तथा एक समान अभिव्यक्ति, श्रवण, मनन चिंतन और सभी क्रियाओं में समानता होने के कारणा स्वाभाविक जुड़ाव होता हैं अब यदि कुछ मुठ्ठी भर लोग मानव–मानव में ऊँच–नींच का भेद स्थापित करते हैं तो यह उनकी नीचता की पराकाष्टा ही है कि वे हर प्रकार से एक समान शारीरिक क्रियाओं और मानसिक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करते हैं तब फिर आपस में कुछ मानव ऊँच और कुछ नीचे कैसे हो गये ? फिर ऊँचनीच बताने का आधार क्या है कुल जनसंख्या का 15 प्रतिशत ऊँचा कैसे ? और 85 प्रतिशत नीचा कैसे और क्यों ? साथ ही ऐसी अमानवीय ऊँचाई, नीचाई का कारण क्या ? निवारण क्या ? तथागत गौतम बुद्ध ने ऐसुकारी सूत्र में मानव–मानव में भेद करने आये ब्राम्हणों को आड़े हाथों लेकर कहा है कि –

'तुम मनुष्य–मनुष्य में भेद पैदा करने वाले कौन ? तुम्हें मानव–मानव में ऊँच–नीच का श्रेणीकरण करने के लिये किसने अधिकृत किया ? तुम ऊँच कैसे बन गये ? बाकि सब नीच कैसे ? फिर मानव–मानव के मध्य ऊँच–नींच का और

छुआछूत का भेदभाव डालने से फायदा किसकों हुआ और नुकसान किसकों ? तु हर प्रकार से उत्तम क्यों ? तुम बिना श्रम करके आम लोगों की कमाई पर अधिकार जमाने वाले कैसे बन गये ? या तो मेरे प्रश्नों का उत्तर दो वरना मैं मानूगा ओर लोगों से भी तर्क के आधर पर मनवाऊंगा कि तुमसे नीच जात दुनिया में दूसरी नहीं है ।''

तथागत गौतम बुद्ध ने तो आर्य ब्राम्हणों से अनेक बार प्रश्नोत्तर करके समझाया कि प्रकृति प्रदत्त सभी अधिकारों पर तुम मुठ्ठीभर लोगों का कब्जा क्यों और श्रमपूर्ण सभी कार्यों को इस देश के अनार्य असुरों, राक्षसों, दैत्य, दानवों तथा महिलाओं को सौंपकर उनका शोषण करने का हक तुम्हें किसने दिया ? उनकी इस प्रकार की भर्त्सना का आर्यों के पास कोई उत्तर नहीं था । क्योंकि गौतम बुद्ध हिंसा के विरूद्ध थे वे यज्ञ जैसे कर्मकाण्ड और आर्य ब्राम्हणों द्वारा फैलाये जा रहे पाखंड पूजा एवं अंधविश्वास के भी घोर विरोधी थे । इस प्रकार हम देखते हैं कि तथागत बुद्ध की सामाजिक क्रांति में सामाजिक न्याय की पवित्र धारा बुद्ध के धम्म और संघ के रूप में बही पुरातन मूल्यों की वहीं धारा थी ।

उसी सामाजिक न्याय की धारा का प्रवाह संत सम्राट कबीर साहब, महात्मा ज्योतिराव फुले, छत्रपति शाहुजी महाराज और बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने प्रवाहित किया । उन्होंने सामाजिक अन्याय से पीड़ित किये गये इस देश के बहादुर मूल बासिंदों को उनके अधिकारों के लिये जाग्रत करने का काम किया । तथागत गौतम बुद्ध, संत कबीर और महात्मा ज्योतिबा फुले को बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने अपना गुरू इसलिये माना था कि उन विभूतियों ने तथागत बुद्ध द्वारा प्रवाहित उसी सामाजिक न्याय की प्राप्ति हेतु जीवनभर कार्य किये और सामाजिक अन्याय से दबाये गये बहुसंख्यक लोगों को जगाकर इस प्रकार के शोषण से मुक्त करवाने के प्रयास जीवन भर तकलीफे उठाकर यहाँ तक कि जीवन की बाजी लगाकर किये थे । तथाकथित स्वतंत्रता का जो भाव गांधी एवं उनकी मण्डली के मन में था वह भारतवर्ष के मूलबासिंदों के लिये नहीं था । इस हिन्दू धर्म (वास्तव में ब्राम्हण धर्म) के अन्दर मनमाने ढंग से अपनी जनसंख्या वृद्धि के उद्‌देश्य से खींचकर रखी गई ।

शूद्र और अतिशूद्र जैसी छूत–अछूत जातियां चातुर्वण्य व्यवस्था के अन्याय से सदियों से ग्रसित एवं पीड़ित थी, उन्हें मानवीय अधिकार नहीं थे, उन्हीं सामाजिक अन्याय के भावों ने डॉ. बी.आर. अम्बेडकर को सामाजिक न्याय हेतु जिहाद छेड़ने वाले अस्पृश्य नेताओं में प्रथम स्थान दिया ।

बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर भी पाश्चात्य देशों में शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर समता स्वतंत्रता और बन्धुत्व के मानवतावादी दर्शन को भली–भाँति समझ चुके थे । जहां गांधी, पटेल, सावरकर सवर्ण नेता भारत की स्वतंत्रता की बात करते थे वहीं पर बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर हिन्दू चातुषवर्ण व्यवस्था की सारणी में सबसे नीचे के शूद्र अतिशूद्रों को समान अधिकार सामाजिक न्याय की बात करते थे, सामाजिक न्याय की अवधारणा से सभी स्वतंत्रता सेनानी और नेता अवगत थे, परन्तु उस न्याय के मूल में पश्चिमी देशों की जन क्रान्तियों के परिणाम निहित थे । सभी क्रांतियाँ असमानता अन्याय, भेदभाव के कारण हुई ।[4]

उन पश्चिमी देशों में हुई जनक्रांतियों के पहले ही भारतवर्ष के मूल धम्म (बौद्ध धम्म) में सामाजिक न्याय के अनेकानेक उदाहरण उल्लेखित मिलते हैं । आज से 5000 वर्ष पूर्व एक समाज (जो विदेशी था) अपने आपको सुवर्ण कहते हुए दूसरा समाज जो इस देश के मूल निवासी थे, अस्पृश्य कहते हुए उसे धुत्कार कर, गाँव से बाहर रखकर उसे हर चीज से वंचित करके, कंगाल बनाकर कमजोर बना दिया गया था, उसके दिमाग को भी कमजोर बना दिया गया था और उसे अपने हालात की असलियत का भी पता न चले उसकी भी व्यवस्था की गई थी फिर उसे धर्म के नाम पर वर्णाश्रम धर्म, पुनर्जन्म किस्मत इत्यादि जैसी बातों की झंझटों की जाल में फंसा दिया गया था ।

सुवर्ण कहे जाने वाले लोगों ने यहाँ की (उनकी) जमीन, जायदाद पर पहले से ही कब्जा कर लिया था और उसी तरह नदी, नाले, कुओं पर भी कब्जा कर लिया था जिसकी वजह से अछूत कहे गये लोग, नदी नाले और कुओं से पानी नहीं ले सकते थे ।[5]

बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने भारत के सहस्त्राब्दियों से सामाजिक अन्याय की पीड़ा झेलते हुए इन बहुसंख्यक आदि निवासियों के लिये सतत् संघर्ष करके जातिविहीन समतामूलक समाज की संरचना का महा संग्राम किया और भारतीय

संविधान की रचना करके उसमें मूल अधिकारों के अन्तर्गत अनुच्छेद 14 वर्णन किया है कि भारत राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता के अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जावेगा । अनुच्छेद 15 में भी लिख दिया है कि – ''राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा । वहीं अनुच्छेद 17 में लिखा है कि अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है । अस्पृश्यता से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा ।''[6]

भारत के संविधान में चयनित संविधान सभा द्वारा इस प्रकार के अनेक मूल अधिकारों का समावेश करना विश्वभर के लिये बड़े आश्चर्य और आनंद की अनुभूति देने वाला तत्व हो गया जिससे सभी मानवतावादी शुभचिंतकों को बड़ा शुकून मिला । इस प्रकार भारत में डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर द्वारा सामाजिक न्याय की बहुत बड़ी मिसाल कायम की है जिसके कारण यहाँ जातिविहीन समता मूलक समाज की संरचना का मार्ग प्रशस्त हुआ है । उन्होंने शोषण के विरूद्ध अधिकार के अन्तर्गत अनुच्छेद 23–24, धर्म स्वतंत्रय का अधिकार के अन्तर्गत 25–26–27–28, संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार में 29, 30 सम्पत्ति के अधिकार में अनुच्छेद 31 और सांविधानिक उपचारों के अधिकारों में अनुच्छेद 32 का प्रावधान करके यह निश्चित कर दिया कि भारत वर्ष में जातिविहीन समतामूलक समाज की स्थापना में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित होना मुश्किल है ।[7]

बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रारूपित संविधान विश्व भर का सर्वोत्तम संविधान निरूपित किया गया है और उनको कोलंबिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) के द्वारा करवाये गये सर्वे में विश्व की प्रथम नम्बर की विभूति के रूप में मान्य किया गया है, क्योंकि उनके द्वारा मानवता तथा सामजिक न्याय के पक्ष में जिन विशेष अनुच्छेदों की प्रविष्टि संविधान में की गई है उनका कोई सानी नहीं मिलता है । भारतीय संविधान में शोषित समाज के लिये कुछ विशेष प्राविधान किये गये हैं और यदि इन प्राविधानों को प्रभावी ढंग से लागू किया जाये तो शोषित समाज का सर्वांगीण विकास होगा जिसके फलस्वरूप आदर्श समाज (समतामूलक) की स्थापना होगी यह प्राविधान मुख्यतः तीन प्रकार से कार्यान्वित किये जाने चाहिये ।

1— आर्थिक विकास

भारतीय समाज के सदियों से शोषित एवं अधिकार विहीन वर्गों को प्राथमिकता के आधार पर भारतीय संविधान में प्रदत्त सभी अधिकारों का लाभ व्यावहारिक रूप से मिलना चाहिए । उन्हें आर्थिक सहायता देकर शिक्षा प्रदान करनी चाहिये ।

2 आरक्षण के प्राविधानों का कार्यान्वयन

3. छुआछूत के विरूद्ध कानून लागू करके इस कुप्रथा को समाप्त किया जाना चाहिये । इससे उन्हें आर्थिक, धार्मिक एवं राजनैतिक स्वतंत्रताऐं प्राप्त हो सकेगी जो समता मूलक समाज की स्थापना में सहायक होगी ।

स्पष्ट है कि समतावादी समाज की चाह रखने वाले देश के महान मूल निवासी लेखक सपूतों ने अपनी–अपनी कलम की धारों को तेज करते हुए सामाजिक न्याय की कामना की । किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर उनके तर्क सही होने के बाद भी आर्य ब्राम्हण साहित्यकारों ने उन्हें मान्यता नहीं दी बल्कि सत्ता हस्तान्तरण के बाद तो इन बहिष्कृत लेखकों के विरूद्ध अलग–अलग राज्यों में उनके धर्म ग्रन्थों (जिनका इस वैज्ञानिक युग में कोई औचित्य नहीं है) की बातों को खंडित करने के अपराध में कुकदमों की बागड़ें लगा दी है । अब ये वृद्ध धर्म निरपेक्ष सोच रखने वाले भारतीय संवधिान को मान्यता देने वाले लेखक गण अपने राज्यों के साथ ही दूसरो राज्यों के न्यायालयों के चक्कर लगा लगाकर अपने कीमती समय, शक्ति और पैसा लगाने के लिए बाध्य किये जा रहे हैं । देश की आजादी (नहीं सत्ता हस्तान्तरण) के पश्चात भारतवर्ष में पुनः ब्राम्हणी राज्य की स्थापना हो गई । तात्कालीन गृहमंत्री श्री सरदार पटेल और प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने सबसे पहले सरकारी धन का दुरूपयोग करते हुए सोमनाथ के मंदिर का जीर्णोद्धार किया । इस कार्य के माध्यम से गैरमुस्लिमों में यह भावना जगाने में उन्होंने कामयाबी हासिल करली की तुर्कों के हमले में लूटे गये इस मंदिर को पवित्र करना हिन्दू धर्म का सबसे पवित्र तथा महान् कर्त्तव्य है । वहीं दूसरी और राष्ट्रपति के गौरव को मटियामेट करते हुए राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने सार्वजनिक रूप से 100 ब्राम्हणों के पाँव धोकर उनके चरणों में धौंक लगाई । ऐसे गैर संवैधानिक क्रियाकलापों द्वारा उन्होंने देश में ब्राम्हणी पाखंडों और अंध विश्वासों को पुर्नप्रतिष्ठा की । इस सम्बन्ध में डॉ. लोहिया की पुस्तक

जातिप्रथा में लिखा है कि ''ऐसे पादप्रक्षालन करके उसे एक ब्राम्हण जाति तक सीमित करना दण्डनीय अपराध माना जाना चाहिये । यह प्रजातांत्रिक देश और उसके संविधान का खुला उल्लंघन है ।''[9] और यदि मैं यह कहूँ कि यहीं से भारतीय संविधान को हाशिये पर धकेलने की नींव पड़ी है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी । डॉ. अम्बेडकर ने अपने जीवन काल में 12 से अधिक बड़े–बड़े अधिकार आन्दोलन चलाये थे । जिसमें सबसे महत्वपूर्ण और वंचितों के लिये प्रभावशाली आन्दोलन था दिनांक 27 दिसम्बर, 1927 को महाड़ में पानी का आन्दोलन । उसके पहले दिनांक 27 फरवरी, 1927 को बम्बई की विधान परिषद् में भाषण देते हुए उन्होंने कहा – ''शासक को चाहिये कि वह दलितों की हर तरह से सहायता करें । डॉ. अम्बेडकर ने इस भाषण में मांग की कि अछूतों को समाज में समान अधिकार मिले और उन्हें तालाबों, कुओं और नलों से निर्बाध पानी भरने दिया जाये तथा इसमें उनके और सवर्णों के बीच कोई भेदभाव न किया जाये ।''[10]

महाड़ आन्दोलन उस समय का सबसे विशाल जनसमूह वाला आन्दोलन था इससे पहले देश के किसी भी नेता के चवदार तालाब के पानी के आन्दोलन जैसा आन्दोलन नहीं लाया था और न ही विशाल अस्पृश्य जनसमुदाय का किसी नेता ने नेतृत्व किया था । उस समय बाबा साहब के नेतृत्व में 20,000 से अधिक अस्पृश्यों ने अपनी भागीदारी का निर्वहन करते हुए अपने अधिकारों की मांग की थी ।

''यह वास्तव में एक बड़ी ऐतिहासिक घटना थी । इसके पहले अछूतों ने अपने अधिकरों के प्रति ऐसी जागरूकता और ऐसा दृढ़ निश्चय कभी नहीं दर्शाया था ।''

हम भी इंसान है

सन् 1920 का पूरा वर्ष सामाजिक न्याय को मांगने के संघर्ष में बीता था । दिनांक 25 दिसम्बर, 1927 को डॉ. अम्बेडकर ने महाड़ में एक महती सभा को सम्बोधित किया ।[11]

सामाजिक न्याय की स्थापना की बातें तो उन्नीसवी सदी से ही प्रारंभ हो गई थी किन्तु क्रियान्वयन के प्रति सबसे बड़ी बाधा रही है ब्राम्हणवादी मानसिकता । देश की महान् कही जाने वाली विभूति (प्रथम प्रधानमंत्री) पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक में कहा है कि ''आज के समाज के सन्दर्भ में जाति पद्धति और इसके साथ होने वाली अन्य कई बातें प्रगति के लिये पूर्ण रूप से बेमेल,

प्रतिकारवादी, रूकावटी और बाधक हैं । इस जाति प्रथा के कारण न तो सामाजिक परिस्थितियाँ और अवसरों में समानता हो सकती है और न ही राजनैतिक जनतंत्र हो सकता है, जबकि आर्थिक जनतंत्र तो बहुत दूर की बात है । इन दो धाराओं के बीच संघर्ष स्वाभाविक बात है, क्योंकि इन दो में से एक ही जीवित रह सकती है ।''[12]

अवसरों की समानता के विषय में आजाद भारत के इन प्रधानमंत्री जी ने लिखा है किन्तु अपने कार्यकाल की लम्बी अवधि 18 वर्ष में इन्होंने अवसरों की समानता के लिये कितने प्रयास किये इसका ज्वलंत उदाहरण है बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर द्वारा संविधान सभा में महिलाओं के लिये प्रस्तुत किया गया हिन्दू कोड बिल है जिसका समर्थन नेहरू जी ने नहीं किया और उसी कारण स्वाभिमानी बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर को उनके मंत्री मंडल से इस्तीफा देने के लिये विवश होना पड़ा ।

उपरोक्त सभी प्रकार के सन्दर्भों से स्पष्ट है कि अंग्रेज भारत से लेकर सत्ता हस्तांतरित तक एक मात्र बाबा साहब ही सामाजिक न्याय की लड़ाई लड़ने वाले योद्धा थे । चाहे अवसरों की समानता की बातें करे चाहे हिन्दू धर्म की विध ार्मी धारणाओं की बात हो किसी धर्म–धुरी ने अपने श्रीमुख से यह नहीं कहा कि मानव मानव में भेद करना सामाजिक अन्याय है । सम्पूर्ण विश्व में देखने पर मालूम हुआ कि धुरन्धर प्रवचनकार, व्याख्यानकार, शंकराचार्य और मठाधीशों की बाढ़ केवल भारत में ही मिलती है संसार में कहीं भी इसाई, इस्लाम या यहूदियों में नहीं मिलती है । ठेके पर धर्म हिन्दुत्व में चलता है । चन्द वर्षो पूर्व एक प्रवचनकार को हवाई जहाज का किराया देकर इंदौर के दशहरा मैदान में बुलाया गया था । लाखों की भीड़ देख प्रवचनकार का मन लालच से भर गया । प्रवचन देने का सौदा हुआ और धर्म के ठेकेदारों ने जब चढ़ावे की राशि के बंटवारे पर एतराज किया तो एक प्रचन के 10 हजार रूपये देने से मना किया तो प्रवचनकार बिना प्रवचन के वापस लौट गये थे । अन्य सस्ते प्रवचनकार की व्यवस्था करके काम चलाया गया था । क्योंकि आम इंदौरियों, बड़े–बड़े व्यापारियों और राजनेताओं से चन्दा लिया गया था । आजादी के पश्चात वैज्ञानिक सोच पैदा करने की कोशिश किसी ने नहीं की । केवल हजारों वर्ष पुराने ग्रन्थों के संस्कार डालने पर करोड़ों के व्याख्या, मेले आधी सदी में आयोजित किये गये हैं ।

राष्ट्र धर्म, बुद्धि प्रामाण्य, प्रवृत्ति धर्म, विज्ञान निष्ठा, व्यक्ति स्वातंत्र्य, समता बन्धुता इत्यादि तत्वों पर आधारित नये मानव का निर्माण नहीं हुआ ।'' ''धर्म एक संगठक तत्व है ।'' नये मानव के इस निर्माण की शुरूवात मानव धर्म (विश्व विख्यात) से की जा सकती थी ।

''यहाँ पर वैसी धर्म क्रान्ति कभी नहीं हुई । इक्के दुक्के व्यक्ति से ऐसी धर्म क्रांतियाँ नहीं हुआ करती । उसके लिये (विश्व मान्य) ग्रन्थों की प्रवचनों की व्याख्यान की, धुवांधार वर्षा करनी पड़ती है । लेकिन यहाँ के कवियों में, ग्रन्थकारों ने, आचार्यों ने पौराणिकों ने, कीर्तनकारों ने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं किया । स्वराज्य और स्वातंत्र्य का उनके साहित्य से, काव्य से धर्म से कोई सम्बन्ध ही नहीं था । आपस की फूट, स्वजनद्रोह, स्वामीद्रोह आदि दुर्गुणों का इनके व्याख्यानों में धर्म प्रवचनों में कहीं भी किसी भी रूप में अधिक्षेप नहीं हुआ ।''[13]

किसकी जाति क्या है, कौन किसके छू गया, किसने किसका स्पर्श किया, नहाया की नहीं, कौन अस्पृश्य की छाया से अपवित्र हो गया है ? किसको कितना चढ़ावा मिला, कोई अछूत, कहीं शिक्षा प्राप्त तो नहीं कर रहा है ? कहीं किसी बहिष्कृत ने किसी कुए से पानी तो नहीं भर लिया है ? कोई मंदिर या तालाब किसी दलित के छूने से अपवित्र तो नहीं हो गया । यही कुछ इस देश में होता रहा है । विद्वता का पिटारा केवल भूदेवता के पास ही होना चाहिए यदि किसी स्त्री ने संस्कृत शब्द बोल लिया कोई मंत्र किसी आदिनिवासी ने सीख लिया तो थू–थू करना ही चाहिये डॉ. सम्पूर्णानंद की प्रतिमा का अनावरण जगजीवनराम जी ने किया तो पंचगव्य से स्नान करवा कर उसे पवित्र करवाने में आर्य ब्राम्हणों की काली करतूत 21 वीं सदी की ही है न ? हम क्यों भूले – ''अंग्रेजों मुसलमानों का राज हम पर रहा, हम उनके गुलाम हो गये तो उससे हिन्दू धर्म की कोई हानि नहीं हुई, परन्तु उनके या हिन्दू धर्मीया कहार–धेडों के सहवास में रहने पर हानि हो गयी । यही सब जाति भेद का प्रभाव था ।''[14] ये सब हिन्दू धर्म के पतन के लक्षण हैं जिससे स्वतंत्रता, समता बन्धुता और सामाजिक अन्याय का ही बोलबाला है इसे धर्म कैसे कहा जावे यह एक ज्वलंत प्रश्न है ।

इन सभी सामाजिक स्थितियों और सामाजिक विखंडन की परिस्थितियों का विशद् अध्ययन बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने किया था । वे विश्व के प्रथम विद्वान चुने गये । कोलंबिया विश्वविद्यालय के सर्वे में वे दुनिया की दृष्टि में ––सिम्बोल ऑफ नॉलेज'' के पद से प्रतिष्ठित हुए किन्तु हिन्दू धर्म में उनकी विद्वता की कीमत क्या है ? इसकी परवाह हम उनके अनुयायी भारतवर्ष में नहीं करते हैं हम हिन्दू धर्म को ही अधर्म मानते हैं । दुनिया के किसी देश में जातिभेद–छुआछूत और अस्पृश्यों की ऐसी कोई दुर्गति नहीं है जैसी आर्य ब्राम्हणी धर्म (हिन्दू धर्म) में है इसलिये भारत के 85 प्रतिशत लोग जो किसी न किसी प्रदेश में किसी न किसी प्रकार की सामाजिक न्याय के अभाव की पीड़ा झेलते हैं वे कभी भी इसे मान्य नहीं करते हैं । क्योंकि हिन्दुस्तान में केवल तीन जातियॉ एक सिरे से दूसरे सिरे तक उत्तम बखानी गई है । ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य । शेष मानवों को 6743 हजार जातियों को बांट कर सांस्कृतिक आन्दोलन को धर्म के चोले में ढांककर उपरोक्त तीनों जातियाँ सदैव राजसत्ता पर काबिज रहने में लगी हुई है ।

वर्ण व्यवस्था में खंड–खंड की गई जातियों के नेतृत्व कर्ता मात्र एक मनीषी बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर हैं जिन्होंने अपनी बुद्धि वैभव की छाप विश्व के सामने रखते हुए अपने लेखन और आन्दोलित करने वाले भाषणों से यह सिद्ध कर दिया कि ''भारत न तो धार्मिक देश है न यहाँ का धर्म आध्यात्मिकता है । यहाँ सबसे बड़ी धारा ब्राम्हणवादी है । हिन्दुत्व वास्तव में आजादी से पहले के समय में सामंती तत्वों की राजनीति था और अब यह उच्च जाति/उच्च वर्ग इलीट के राजनीतिक ऐजेंट का प्रतिनिधित्व करता है ।''[16]

इस हिन्दुस्तान में (संवैधानिक भारत में नहीं) सामाजिक न्याय एवं जातिविहीन समतामूलक समाज रचना की कोई स्थिति नहीं है । अतएव बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के दिखाये मार्ग का अवलम्बन करते हुए देश के मानवतावादी समाज सुधारक बौद्धिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए असंवैधानिक मान्याताओं के परित्याग करके लोकतांत्रिक आदर्शों की स्थापना करते हुए शोषित समाज के मूल बासिन्दे संगठित होकर छुआछूत के विरूद्ध सामाजिक अन्याय के खिलाफ सभी प्रकार की

संवैधानिक असमानताओं की समाप्ति करके नैतिक आदर्शों की स्थापना के आन्दोलनों को संचालित कर रहे हैं । जिनके कारण देश में विश्व मानव हितैषी दृष्टिकोण के निर्माण की उम्मीद जाग्रत हुई है ।

❐

सन्दर्भ –

1. *यू. के. तिवारी, भारतीय इतिहास, 2003 ।*
2. *सूत्र ऐसुकारी ।*
3. *रघुवीर सिंह, इक्कीसवीं सदी में अम्बेडकरवाद ।*
4. *एच. श्रेयस्कर, भूदेवताओं का मेनीफेस्टो (सम्पादकीय) ।*
5. *भारत सरकार विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत का संविधान – भाग 3 रजत जयंति संस्करण ।*
6. *के.एन. संत, भारत का संविधान बनाम महाभारत ।*
7. *लोहिया – जाति प्रथा ।*
8. *निकुंज – आधुनिक युग के मनु ।*
9. *जवाहरलाल नेहरू, डिस्कवरी ऑफ इण्डिया ।*
10. *पु.ग. सहस्त्रबुद्धे, हिन्दू समाज संघटन और विघटन ।*
11. *राम पुनिया, साम्प्रदायिक राजनीति तत्य एवं मिथक ।*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 83–84, अक्टूबर,2015–मार्च,2016 पृ. 88–93 ***ISSN 0974 -1100***

महिला सशक्तिकरण का बालिका अनुपात पर प्रभाव

डॉ. बिन्दु महावर

महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक विकास की प्रक्रिया में सहभागी बनाने के साथ उनमें जागृति और मानसिक सबलता विकसित करना ही महिला सशक्तिकरण है तथा बालिका अनुपात से तात्पर्य प्रति हजार 6 वर्ष से कम आयु के बालकों पर बालिकाओं की संख्या से है। महिला सशक्तिकरण को मापने के सूचकांकों में प्रति महिला आय तथा महिला साक्षरता दर प्रमुख सूचकांक है। जब प्रति महिला आय बढ़ती है तो महिलाओं का जीवन स्तर ऊंचा उठता है साथ ही महिलाओं के आर्थिक रूप से सक्षम होने पर महिलाएँ पारिवारिक निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, निश्चित ही यह तथ्य बालिकाओं के अनुपात को बढ़ाने में सहायक होगा। महिला सशक्तिकरण का एक अन्य महत्वपूर्ण अस्त्र शिक्षा है। शिक्षा के माध्यम से महिलायें वैज्ञानिक सोच, जागरूकता, प्रगतिशीलता तथा आधुनिकीकरण तर्क एवं विवेक जैसें नये विचारों और मान्यताओं को आत्मसात करती है यह तथ्य रूढ़िवादी विचारों को दूर करने एवं बालिका शिशु–मृत्युदर रोकने तथा बालिका अनुपात बढ़ाने में सहायक होगा। अतः यह अध्ययन प्रासंगिक हो जाता है कि महिला सशक्तिकरण का बालिका अनुपात पर प्रभाव का परीक्षण किया जाए तथा बालिका अनुपात बढ़ाने हेतु मौलिक सुझाव प्रस्तुत किये जायें।

साहित्य समालोचना

महिला सशक्तिकरण तथा लिंगानुपात एवं बालिकाओं का घटता अनुपात आदि विषयों पर चिंतकों, विद्वानों तथा लेखकों द्वारा समय–समय पर अपने विचार व्यक्त किये है तथा विचार–विमर्श चलता रहा है। पूर्व किये गए कार्य सदैव नवीन दिशा–निर्देश करते है।

1· मैत्रिया कृष्णराज (Economic and political weekly Vol.XII No. 42 October 21-27, 2006) " Is Gender Easy to Study : So Reflections" यह विश्लेषण महिला समानता तथा सशक्तिकरण पर प्रकाश डालाता है साथ ही महिला लिंगानुपात महिलाओं की योग्यता, स्वतंत्रता, महिलाएँ तथा सामाजिक पूँजी जैसे विषयों पर केन्द्रित है।

2 मंजरी दामले एवं डॉ0 गणेश कावड़िया (डॉ. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका अंक 11 वर्ष 2003 पेज नं.67) ''शिक्षा तथा सत्ता में भागीदारी द्वारा महिला सशक्तिकरण'' इस अध्ययन में महिलाओं की सत्ता में भागीदारी तथा शैक्षणिक स्तर का लिंगानुपात पर प्रभाव का मूल्यांकन किया गया है।

3 डॉ. प्रदीप सिंह राव (Research link Issue – 33 Vol. 8, November – 2006 i'"B 58) **''बालिकाओं का घटता अनुपात दशा और दिशा''– यह अध्ययन दर्शाता है कि महिला सशक्तिकरण की पश्चिमी शैली की प्रणाली को अपनाने से परंपरा** आाधारित भारतीय समाज की स्थितियॉ बिगड़ सकती है इसीलिय यह जरूरी है कि समाज और पुरूष दोनों को महिलाओं और कन्या भ्रूण हत्या के प्रति अपनी मानसिकता को बदले और नारी की इज्जत और उसका सम्मान करें। जब तब हम महिलाओं की इन समस्याओं को जड़ से समाप्त नहीं करेंगें तब तक महिला दिवस जैसे सशक्तिकरण कार्यक्रम एक बेमानी होगा।

रेणुका विश्वनाथन (Economic and political weekly Vol. XXXVI No. 24 June 16-21, 2001 page No.2173) – Development Empowerment and Domestic Violen : Karnataka Experience. यह अध्ययन दर्शाता है कि महिलाओं

के आर्थिक, राजनीतिक तथा व्यावसायिक भागीदारी जैसे सूचकांको के माध्यम से तुलनात्मक अध्ययन किये गये है। परन्तु उन विध्वंसात्मक सामाजिक व्यवस्था के मुद्दों पर सभी अध्ययन मौन है जिनकी महिला शिकार बनती है।

उपरोक्त सभी अध्ययन समष्टि स्तर पर भारत के विभिन्न राज्यों में महिला सशक्तिकरण का लिंगानुपात पर प्रभाव की माप करते है जबकि प्रस्तुत अध्ययन व्यष्टि स्तर पर मध्यप्रदेश के विभिन्न जिलों में महिला सशक्तिकरण का बालिका अनुपात पर प्रभाव जैसे– मौलिक पहलू पर विचार व्यक्त करने के कारण सामायिक बन पड़ा है।

अध्ययन के उद्देश्य

महिलाओं के आर्थिक विकास के स्तर तथा बालिका अनुपात के मध्य संबंध ज्ञात करना।

महिलाओं की साक्षरता दर का बालिका अनुपात पर प्रभाव ज्ञात करना

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

महिलाओं के आर्थिक विकास के स्तर तथा बालिका अनुपात के मध्य ऋणात्मक सहसंबंध पाया जाता है।

महिलाओं की साक्षरता का बालिका अनुपात बढ़ाने पर ऋणात्मक प्रभाव है।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन द्वितीयक संमकों पर आधारित है। द्वितीयक संमकों के संकलन हेतु मध्यप्रदेश सरकार का प्रकाशन ''मध्यप्रदेश मानव विकास प्रतिवेदन 2002'' को आधार बनाया गया है। इस अध्ययन में महिला सशक्तिकरण का बालिका अनुपात पर प्रभाव ज्ञात करने हेतु तीन चरों का चयन किया गया है। महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण की माप प्रति महिला आय के आधार पर तथा शैक्षणिक विकास के स्तर को साक्षरता दर से मापा गया है। बालिका–अनुपात की माप हेतु बालिका–लिंगानुपात को आधार बनाया गया है। महिला सशक्तिकरण का बालिका अनुपात पर प्रभाव ज्ञात करने हेतु स्पियरमैन विधि से सह संबंध गुणांक की गणना करके परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है।

परिणाम एवं विश्लेषण

महिलाओं का आय स्तर तथा बालिका अनुपात

महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण बालिका अनुपात बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण माध्यम माना जाता है क्योंकि महिलाओं के आर्थिक रूप से सशक्त होने पर ही एक आर्थिक इकाई के रूप में महिलाओं का राष्ट्र के आर्थिक व सामाजिक विकास में योगदान को मूल्यांकित किया जायेगा। यह तथ्य निश्चित ही बालिका अनुपात बढ़ाने में सहायक होगा। अतः उपरोक्त अध्ययन में महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का बालिका अनुपात बढ़ाने पर प्रभाव ज्ञात करने हेतु श्रेणी–अंतर की गणना की गई है। परीक्षण से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि ऐसे जिले जहॉ महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण तथा बालिका अनुपात के बीच धनात्मक श्रेणी अन्तर डी–1 आ रहा है जिससे यह स्पष्ट होता है ऐसे जिलों की संख्या 20 है जिनमें झाबुआ, बड़वानी, खरगोन व उमरिया आदि प्रमुख है। मध्यप्रदेश के कुछ जिले ऐसे है जहॉ श्रेणी–अंतर डी–1 ऋणात्मक है। यह तथ्य इंगित करता है कि इन जिलो में प्रति महिला आय बालिका–अनुपात बढ़ाने में असफल रही है ऐसे जिलों की संख्या 23 है जिनमें नीमच, हरदा, उज्जैन, शाजापुर, दतिया आदि प्रमुख है। मात्र दो जिले में श्रेणी अन्तर डी–1 शून्य है अर्थात् यहॉ पर प्रति महिला आय पूरी तरह से बालिका अनुपात को बढ़ाने में सफल रही है यह जिले है मुरैना तथा सतना।

समग्र रूप से प्रति महिला आय व बालिका–अनुपात के मध्य घनिष्ठता ज्ञात करने हेतु श्रेणी अन्तर सहसंबंध गुणांक की गणना की गई है जिसका मान (r=+0.332) प्रदर्शित करता है कि महिलाओं को आर्थिक इकाई के रूप में मूल्यांकित किया जा रहा है। परिणामतः महिलाओं का आर्थिक विकास का स्तर बालिका–अनुपात बढ़ाने पर धनानतक प्रभाव डाल रहा है।

महिलाओं की साक्षरतादर तथा बालिका अनुपात

शिक्षा व्यक्ति के सामाजिक तथा आर्थिक विकास का एक शक्तिशाली साधन है शिक्षा के माध्यम से महिलाओं की क्षमताओं तथा योग्यताओं का विकास होता है। एक शिक्षित महिला ही विकास में सार्थक भूमिका निभा सकती है। यह तथ्य बालिका–अनुपात बढ़ाने में सहायक होगा। इसे मूल्यांकित करने हेतु

मध्यप्रदेश में महिलाओं की साक्षरता दर तथा बालिका–अनुपात के बीच श्रेणी–अंतर की गणना की गई हे। परिणाम से स्पष्ट है कि ऐसे जिले जहॉ महिलाओं को साक्षरता दर व बालिका अनुपात के बीच धनात्मक श्रेणी अन्तर डी–2 आ रहा है। इससे स्पष्ट है कि यही वे जिले है जहॉ साक्षरता दर बढ़ने से बालिका अनुपात को बढ़ा सके है। ऐसे जिलों की संख्या 23 है जिनमें झाबुआ, डिण्डौरी, बड़वानी, मण्डला, शहडोल आदि जिले प्रमुख है। मध्यप्रदेश के कुछ जिले ऐसे है जहॉ अन्तर डी–2 ऋणात्मक है जो यह स्पष्ट करता है कि इन जिलों में साक्षरता दर बालिका अनुपात बढ़ाने में असफल रही है ऐसे जिलों की संख्या 22 है जिनमें इन्दौर, भिण्ड, ग्वालियर, नरसिंहपुर दतिया आदि जिले प्रमुख है।

समग्र रूप से साक्षरता दर तथा बालिका अनुपात के मध्य घनिष्ठता जानने हेतु श्रेणी सहसंबंध गुणांक की गणना की है जिसका मान ($r = -0.225$) है जो कि ऋणात्मक है यह मान प्रदर्शित करता है कि साक्षरता दर बालिका–अनुपात बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभा पा रहीं है। सम्भवतः यह महिला शिक्षा के बहुत कम होने के कारण हो सकता है। साक्षरता दर में वृद्धि से महिलाओं की स्थिति में सुधार की परिकल्पना की जा सकती है। इससे कुछ समय पश्चात् बालिका–अनुपात में वृद्धि की उम्मीद की जा सकती है।

उपरोक्त अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षो से स्पष्ट है कि महिला सशक्तिकरण के आर्थिक चर प्रति महिला आय का बालिका अनुपात बढ़ाने पर धनात्मक प्रभाव है जबकि महिला सशक्तिकरण के एक अन्य चर साक्षरता दर का बालिका अनुपात बढ़ाने पर ऋणात्मक प्रभाव है। इसका मुख्य कारण मध्यप्रदेश के विभिन्न जिलों में महिला साक्षरता दर कम होने के कारण औपचारिक शिक्षा बालिका अनुपात बढ़ाने में अहम भूमिका निभा नही पा रही है। सम्भवतः साक्षरतादर बढ़ाने पर महिलाओं की बालिका अनुपात बढ़ाने के निर्णय में भूमिका बढ़ाने की उम्मीद की जा सकती है। उपरोक्त अध्ययन से यह तथ्य उभरकर सामने आता है। कि बालिका अनुपात बढ़ाने में औपचारिक शिक्षा अधिक महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभा पा रही है या शिक्षा का बालिका अनुपात बढ़ाने पर प्रभाव एक लम्बे समय के बाद दिखाई देता है यह एक लम्बी प्रक्रिया है। अतः बालिका अनुपात बढ़ाने के लिए महिलाओं में औपचारिक शिक्षा के साथ अनौपचारिक

शिक्षा पर बल देने की आवश्यकता है जैसे– टी.बी., विज्ञापन, फिल्म, रेडियों तथा सरकारी कार्यक्रम स्वास्थ्य कार्यकर्ता आंगनवाड़ी आदि। इन प्रचार माध्यमो का प्रभाव आशिक्षित महिलाओं पर भी पड़ता है। जिससे महिलाओं में जागरूकता बढ़ती है यह तथ्य रूढ़िवादी विचारों को दूर करने तथा बालिका अनुपात बढ़ाने में सहायक होगा।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि महिला सशक्तिकरण के एक या दो माध्यमों से बालिका अनुपात बढ़ाना सम्भव नहीं है अतः सरकार और समाज को अनेक दिशाओं में कार्य करने होगे तभी इसके सकारात्मक परिणाम समाज को प्राप्त होगे। जब महिला आर्थिक रूप से सक्षम, शिक्षित, शारीरिक रूप से स्वास्थ्य तथा जागरूक होगी तभी शोषण, अन्याय, अत्याचार का मुकाबला कर सकेंगी एवं बालिका अनुपात बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगी।

❐

सन्दर्भ –

1 *Economic and Political Weekly Vol. XXXVI No.24, June 22, year 2001.*

2 *Economic and Political Weekly Vol. XII No.42, Oct 21-22, 2006.*

3 *The Asian Economic Review (Journal o the Indian Institute of Economics Vo.45 No.1, April 2003).*

4 *Employee Dowsiz Perpective(HRM Review The ICFAI University Press July, 2005).*

5 *Research Link Issue-33, Vol – 8, Nov.2006.*

6 *डॉ0 अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका अंक 11 वर्ष 2003.*

7 *दैनिक भास्कर '' कब मिलेगा इन्हें जीने का हक ? पृष्ठ स, 21, मंगलवार 27 नवंबर 2007.*

8 *दैनिक भास्कर ''शिशु मुत्युदर प्रयासों की जरूरत'' पेज नं.8, मंगलवार 11, दिसम्बर 2007*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 83–84, अक्टूबर,2015–मार्च,2016 पृ. 94–112 **ISSN 0974 -1100**

सामाजिक समता एवं भारत का संविधान तथा कानून

डॉ. कुसुम मेघवाल

''समता के बिना स्वतंत्रता अर्थात् कुछ लोगों का बहुसंख्यक लोगों पर प्रभुत्व निर्माण करना है । स्वतंत्रता के बिना समता व्यक्तिगत कर्तव्य के लिए हानिकारक है । बन्धुत्व के बिना समता और स्वतंत्रता स्वाभाविक रूप से अस्तित्व में नहीं रहेगी ।''

''यदि राजनीतिक लोकतंत्र के मूल में सामाजिक लोकतंत्र का आधार नहीं है तो वह अधिक समय तक बना नहीं रह सकता ।''

–डॉ. बाबा साहेब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर

इस आलेख को प्रारंभ करने के पूर्व मैंने बाबा साहेब के उक्त उद्धरणों को इसलिए लिखा है कि बाबा साहेब के सम्पूर्ण वांग्मय में समरसता नाम का कोई शब्द ही नहीं है । यह 'समरसता' शब्द आर.एस.एस. द्वारा ईजाद किया हुआ शब्द है, जो भारत में पूर्ण रूप से समता का वातावरण नहीं चाहते । वे केवल समरसता चाहते हैं । Social Harmony का यह हिन्दी अनुवाद ही गलत है । यह सामाजिक समरसता शब्द ब्राम्हणी अनुवाद है । Social Harmony का वास्तविक अर्थ होता है– 'सामाजिक सौहार्द, समता' जिसके लिए बाबा साहेब आजीवन संघर्ष करते रहे, इसलिए हम भारत के मूलनिवासी बहुजनों, लेखकों को तो कम से कम ब्राम्हणी शब्द भ्रम (ब्रह्म) को समझते हुए उसका उपयोग करना चाहिए ।

भारत के समतावादी संविधान का सार तो उसकी उद्देशिका (Preamble) से ही स्पष्ट हो जाता है ।

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्णप्रभुत्व–संपन्न समाजवादी धर्म निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की स्वतंत्रता,

प्रतिष्ठा और अवसर की समता

प्राप्त कराने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और एकात्मता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर 1949 ई. (मिति मार्गशिर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और स्वअर्पित करते हैं ।

यही वे आदर्श हैं, जो भारतीय संविधान के आधार हैं ।

संपूर्ण प्रभुत्व–संपन्न समाजवादी धर्म–निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य–सर्व अधिकार संपन्न, समाजवादी, सभी धर्मों को बराबरी का दर्जा देने वाला (सर्व धर्म समभाव), लोकतांत्रिक तथा लोगों के प्रभुत्व का राष्ट्र । उद्देशिका के प्रारंभ में ''संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य'' यह शब्द थे । समाजवादी और धर्म निरपेक्ष यह शब्द 42 वें संशोधन, 1976 के बाद जोड़े गये ।

लोकतंत्र – डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के अनुसार लोकतंत्र सरकार का वह रूप और पद्धति है, जिससे बिना रक्तपात के लोगों के सामाजिक और आर्थिक जीवन में क्रांतिकारी बदलाव लाये जाते हैं ।

बाबा साहेब के अनुसार, सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के बिना राजनैतिक लोकतंत्र अर्थहीन है । सामाजिक लोकतंत्र, राजनैतिक और आर्थिक लोकतंत्र का आधार है । सामाजिक लोकतंत्र यह एक जीवन मार्ग है, जो समता, स्वतंत्रता और बंधुता को जीवनतत्व के रूप में मान्यता देता है ।

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय ' किसी भी भारतीय के साथ जाति, वर्ण या धर्म के कारण भेद न हो और सबके साथ समान सामाजिक न्याय हो । सभी भारतीयों को आर्थिक प्रगति के समान अवसर प्राप्त हो और किसी के साथ आर्थिक स्थिति के कारण भेद न हो । सभी भारतीयों को वोट देने का समान अधिकार हो, राजनैतिक क्षेत्र में भाग लेने का सबको समान अधिकार हो, और किसी के साथ भी भेद न हो ।

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता – स्वतंत्रता के बिना आदमी के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो सकता । विचार थोपे नहीं जाने चाहिए, अभिव्यक्ति पर पाबंदी नहीं होनी चाहिए, विश्वास करने के लिए मजबूर नहीं करना चाहिए, धर्म और उपासना के लिए बाध्य नहीं करना चाहिए ।

प्रतिष्ठा और अवसर की समता– स्वतंत्रता के बिना न्याय का कोई उपयोग नहीं । उसी प्रकार समता के बिना स्वतंत्रता का कोई उपयोग नहीं । सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में समता हो तथा अवसर और सुविधाऐं प्रदान की जायें, जिससे व्यक्तित्व का पूरा विकास हो ।

व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और एकात्मता सुनिश्चित करने वाली बंधुता – बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के अनुसार बंधुता अर्थात् सभी भारतीयों में समान भाईचारे की भावना । यह ऐसा सिद्धान्त है, जो सामाजिक जीवन में एकता और सुदृढ़ता प्रदान करता है । उनके अनुसार बंधुता के बिना स्वतंत्रता और समता केवल दीवार पर पेन्ट की परत चढ़ाने के समान होगा, जिसमें गहराई नहीं होगी । उन्होंने यह कहा था कि स्वतंत्रता, समता और बंधुता को एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता । व्यक्ति का स्वाभिमान और राष्ट्र की एकता कायम हो, ऐसी बंधुता हो ।

मूलभूत अधिकार

संविधान के भाग 3 में अनुच्छेद 14 से 32 तक मूलभूत अधिकार का वर्णन किया गया है । मूलभूत अधिकारों का उद्देश्य यह है कि, ऐसे समाज का निर्माण हो, जिसमें हर नागरिक समता और स्वतंत्रता का जीवन यापन कर सके तथा यदि राज्य या अन्य व्यक्ति किसी नागरिक के साथ भेदभाव करता है, उसकी स्वतंत्रता के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है तो उसे संवैधानिक संरक्षण मिले । इन

अधिकारों का हनन होने पर कोई भी भारतीय सीधे सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर कर सकता है ।

समता का अधिकार

अनुच्छेद 14 के अनुसार, सभी भारतीय नागरिकों को विधी के समक्ष समता होगी । राज्य तथा भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधी के समक्ष समता या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जायेगा ।

विधी (कानून) सभी लोगों पर समान रूप से लागू होगा, भारतीय नागरिक किसी भी हैसियत का हो, चाहे वह प्रधानमंत्री हो या अत्यंत निम्न स्तर का हो, अपने कृत्य के लिए न्यायालय के समक्ष समान रूप से जवाबदेह होगा । न्यायिक प्रक्रिया समान परिस्थितियों में सबके लिए समान होगी । केवल राष्ट्रपति और राज्यपाल न्यायालय के समक्ष जवाबदेह नहीं होंगे ।

अनुच्छेद 15 (2) (क) के अनुसार, किसी भी नागरिक को केवल उसके धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों के उपयोग से वंचित नहीं किया जा सकता ।

अनुच्छेद 15 (2) (ख) के अनुसार, किसी भी नागरिक को सार्वजनिक कुओं, स्नानघाटों, सड़कों और समागम के स्थानों के उपयोग से वंचित नहीं किया जा सकता ।

अनुच्छेद 15 (3) के अनुसार, राज्य महिलाओं और बालकों के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है ।

अनुच्छेद 15 (4) के अनुसार, राज्य सामाजिक और शैक्षिक दृष्टिसे पिछड़े हुए विद्यार्थियों के लिए तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है ।

अनुच्छेद 15 (5) के अनुसार, राज्य सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुये विद्यार्थियों के लिए तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए शिक्षण संस्थाओं में, जो राज्य द्वारा अनुदानित हो या न हो, प्रवेश हेतु विशेष प्रावधान कर सकता है, इनमें निजी शिक्षण संस्थायें सम्मिलित हैं, परन्तु अल्पसंख्यकों की शिक्षण संस्थायें सम्मिलित हैं, परन्तु अल्संख्यकों की

शिक्षण संस्थायें सम्मिलित नहीं हैं । राज्य सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि पिछड़े हुए तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के लिए आरक्षण, छूट, छात्रवृत्ति इत्यादि का प्रावधान कर सकता है ।

रोजगार में समान अवसर

अनुच्छेद 16 (1) के अनुसार, रोजगार में सबको समान अवसर होगा । राज्य के अधीन किसी भी पद के रोजगार या नियुक्ति का सभी नागरिको को समान अवसर होगा ।

अनुच्छेद 16 (2) के अनुसार, राज्य के अधीन कोई रोजगार या किसी पद के लिए कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, जन्म, जन्मस्थान या निवास के आधार पर अपात्र नहीं होगा और न ही उससे इस आधार पर भेद किया जाऐगा । यह प्रावधान केवल नौकरी में नियुक्ति के लिए ही नहीं, परन्तु सभी प्रकार की नियुक्ति के लिए लागू होगा । इसी प्रकार, केवल नियुक्त के लिए ही नहीं तो पदोन्नति और पदमुक्ति के लिए भी लागू होगा ।

अनुच्छेद 16 (3) के अनुसार, भारतीय संसद को यह अधिकार होगा कि वह ऐसा कानून बना सकती है, जिसमें यह अपेक्षित हो, किसी राज्य में या देश के किसी क्षेत्र में या स्थानीय निकाय में किसी पद पर नियुक्ति के लिए नागरिक उस राज्य या उस क्षेत्र के निवासी हो । ऐसा करने से उस राज्य या उस क्षेत्र के निवासियों को नियुक्ति हो सकेगी । संसद ने इस प्रकार की निवास की शर्त का कानून आंध्रप्रदेश, हिमाचलप्रदेश, मणिपुर और त्रिपुरा में कुछ पदों पर नियुक्ति के लिए बनाया था ।

अनुच्छेद 16 (4) के अनुसार, यदि राज्य के अधीन सेवाओं में किसी पिछड़े वर्ग के नागरिकों का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है और राज्य इसे महसूस करता है तो वह ऐसे वर्ग के लिए आरक्षण का प्रावधान कर सकता है ।

अनुच्छेद 16 (4क) के अनुसार, यदि राज्य के अधीन सेवाओं में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं हैं और राज्य इसे महसूस करता है, तब वह सेवाओं के किसी भी पद पर पदोन्नति हेतु इन वर्गों के हित में आरक्षण का प्रावधान कर सकता है ।

अनुच्छेद 16 (4ख) के अनुसार, यदि किसी वर्ष में अनुच्छेद 16 (4) और 16 (4क) के अंतर्गत आरक्षित पद भरे गये, तब यह बाद के वर्ष में भरे जाऐगें और यह पद उस वर्ष में भरे जाने वाले पदों के साथ कुल पचास प्रतिशत अधिकतम आरक्षण की सीमा में जोड़े नहीं जाऐगें । किसी भी वर्ष में आरक्षित पदों को भरने की अधिकतम् सीमा कुल पदों के पचास प्रतिशत है, परन्तु पिछले वर्षों के रिक्त पद यदि किसी आगामी वर्ष में भरे जाते हैं तो उस वर्ष में ऐसे रिक्त पदों को पचास प्रतिशत पदों के अतिरिक्त भरा जाऐगा ।

अनुच्छेद 16 (5) के अनुसार, यदि किसी कानून में यह प्रावधान है कि किसी धार्मिक या सांप्रदायिक संस्था का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म या संप्रदाय का हो, तब उसे लागू करने में इस अनुच्छेद की कोई बात आड़े नहीं आयेगी अर्थात् ऐसा कानून प्रभावी रहेगा ।

अस्पृश्यता का अंत

अनुच्छेद 17 के अनुसार, अस्पृश्यता का अंत किया गया है उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया गया है । यदि कोई अस्पृश्यता का आचरण करता है तो वह अपराध होगा और कानून के अनुसार दंडनीय होगा ।

संविधान लागू होने के 67 साल बाद भी भारत में अस्पृश्यता का आचरण हो रहा है, विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में । यह अनेक सर्वेक्षणों से सिद्ध हो चुका है । इस अनुच्छेद के अनुसार अस्पृश्यता का अंत किया गया । परन्तु वह आज भी जीवित है और मान्यता प्राप्त है । अस्पृश्यता का आचरण जाति व्यवस्था के कारण किया जाता है । अस्पृश्यता का मूल जाति है । जब तक जाति रहेगी, तब तक अस्पृश्यता रहेगी । अस्पृश्यता का अंत तभी होगा, जब जाति का अंत होगा । इसलिए इस प्रावधान को प्रभावी बनाने हेतु संविधान में ''जाति का अंत'' का प्रावधान करना अत्यंत जरूरी है ।

स्वतंत्रता का अधिकार

अनुच्छेद 19 (1) के अनुसार, सभी नागरिकों को स्वतंत्रता के निम्नलिखित अधिकार होगें ।

(क) वाणी या वाक् स्वतंत्रता और कथन या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार ।

(ख) शांतिपूर्वक और शस्त्ररहित सम्मेलन का अधिकार ।

(ग) ऐसोसिएशन, संगम या संघ बनाने का अधिकार ।

(घ) भारत के राज्यक्षेत्र में मुक्त रूप से घूमने या संचरण करने का अधिकार ।

(ड) भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार ।

(च) कोई व्यवसाय, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार ।

अनुच्छेद 19 (2) के अनुसार, नीचे लिखे हितों की रक्षा के लिए राज्य अपने वर्तमान कानून के अनुसार वाणी या अभिव्यक्ति पर उचित बंधन लगा सकता है या कानून बना सकता है ।

भारत की प्रभुता (Soverignty) और अखंडता (Integrity) राज्य की सुरक्षा, विदेशों से मैत्रीपूर्ण संबंध, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सद्‌आचार के हित में या न्यायालय की अवमानना के संबंध में मानहानि या अपराध भड़काने के संबंध में ।

अनुच्छेद 19 (3) के अनुसार, भारत की प्रभुता और अखण्डता या लोकव्यवस्था के हित में राज्य अपनी वर्तमान कानून के अनुसार संगठित होने के संबंध में उचित बंधन लगा सकता है और इन हितों के लिए कानून बना सकता है ।

अनुच्छेद 19 (4) के अनुसार, भारत की प्रभुता और अखंडता या लोकव्यवस्था या सदाचार के हित में राज्य अपनी वर्तमान कानून के अनुसार एसोसिएशन या संघ बनाने के संबंध में उचित बंधन लगा सकता है और इन हितों की रक्षा के लिए कानून बना सकता है ।

अनुच्छेद 19 (5) के अनुसार, आम जनता के हित में तथा अनुसूचित जनजाति के हितों की रखा के लिए राज्य अपने वर्तमान कानून के अनुसार भारत में मुक्त रूप से घूमने, घर बनाने, बसने तथा आवश्यक वस्तु की खरीदी–बिक्री के संबंध में उचित बंधन लगा सकता है और इन हितों की रक्षा के लिए कानून बना सकता है ।

अनुच्छेद 19 (6) के अनुसार, आम जनता के हितों की रक्षा के लिए राज्य

सरकार अपनी वर्तमान कानून के अनुसार भारत में व्यवसाय, उपाजीविका, व्यापार या कारोबार के लिए व्यावसायिक या यांत्रिक योग्ता संबंधी कानून भी राज्य बना सकता है । इसी प्रकार राज्य स्वयं या कार्पोरेशन बनाकर या उस पर अपना नियंत्रण रख कर व्यवसाय, कारोबार, उद्योग या रोजगार चलाने संबंधी कानून बना सकता है । राज्य ऐसे व्यापार, कारोबार, उद्योग या रोजगार में नागरिकों को अंशतः या पूरी तरह बेदखल कर सकता है ।

इस प्रकार संविधान भारत के प्रत्येक नागरिक को अनुच्छेद 19 (1) में दिये अधिकारों की गारन्टी देता है, परन्तु उनका उपयोग स्वछंद और अनियंत्रित नहीं हो सकता । अराजकता और अव्यवस्था पैदा न हो, इसलिए आम जनता के हित में राज्य बंधन लगा सकता है । इसके अलावा सुरक्षा, स्वास्थ्य, शांति और सामाजिक सौहार्द को बनाये रखने के लिए राज्य आवश्यक शर्ते लगा सकता है ।

यह आवश्यक है कि, राज्य केवल असामान्य स्थिति में नागरिकों के मूलभूत अधिकारों पर बंधन लगा सकता है । यदि लगाए बंधन के कारण किसी के मूलभूत अधिकारों का हनन होता है तो ऐसे लगाए गए बंधन उचित हैं या अनुचित, इस बात का निर्णय करने का अधिकार न्यायपालिका को है ।

अनुच्छेद 20 के अनुसार, अपराधों के लिए दोषी ठहराने पर संरक्षण की व्यवस्था की गई है ।

अनुच्छेद 20 (1) के अनुसार, अपराधी ने जिस समय पर कानून का उल्लंघन किया है, उस समय पर लागू कानून के अनुसार ही उसे दोषी ठहराया जायेगा तथा उस पर उस समय के कानून के अनुसार ही दंड आरोपित किया जायेगा, उससे अधिक दंड आरोपित नहीं किया जायेगा । उसे उस समय के पूर्व के किसी कानून के अनुसार दोषी नहीं ठहराया जायेगा और न ही दंड आरोपित किया जायेगा ।

अनुच्छेद 20 (2) के अनुसार, किसी भी व्यक्ति पर समान अपराधों के लिए एक ही बार मुकदमा चलाया जायेगा और उसे एक ही बार दंडित किया जायेगा ।

अनुच्छेद 20 (3) के अनुसार, किसी भी अपराधी को उसके अपने विरूद्ध साक्षी बनने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा ।

अनुच्छेद 21 के अनुसार, जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संरक्षण की व्यवस्था की गई है । विधि में स्थापित प्रक्रिया के अलावा किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन से या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जायेगा । हर व्यक्ति को अपना जीवन जीने का अधिकार है तथा वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकारी है । केवल कानूनी प्रक्रिया के अनुसार ही किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया जा सकता है ।

राज्य को किसी भी नागरिक की स्वतंत्रता का उल्लंघन करने का अधिकार नहीं है । यदि राज्य किसी नागरिक की स्वतंत्रता का उल्लंघन करता है तो उसे यह सुनिश्चित करना होगा कि कानून के प्रावधानों को कड़ाई से और पूरी तरह से पालन किया गया है । यदि किसी व्यक्ति को गैरकानूनी तरीकों से सजा दी गई है तो वह व्यक्ति राज्य के विरूद्ध न्यायालय में प्रकरण दाखिल कर सकता है अर्थात् शासन किसी व्यक्ति को कानून के प्रावधानों के अनुसार ही दोषी ठहरा सकता है । यद्यपि काम का अधिकार मूलभूत अधिकार नहीं है, परन्तु राज्य का यह कर्तव्य है कि वह समाज के गरीब और कमजोर वर्गों को, दलित और आदिवासियों को जीवन जीने के साधन उपलब्ध कराये ।

अनुच्छेद 21–क के अनुसार, राज्य को शिक्षा का अधिकार प्रदत्त किया गया है । राज्य छः वर्ष से चौदह वर्ष के आयु वाले सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का विधि संगत प्रावधान करेगा ।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 दिनांक 1.4.2010 से लागू हो गया । इस अधिनियम के अनुसार छः से चौदह वर्ष तक की आयु वाले सभी बच्चों को निःशुल्क शिक्षा लेने का अधिकार है ।

अनुच्छेद 22 में कुछ दशाओं में गिफ्तारी और कस्टडी में रखने संबंधी संरक्षण की व्यवस्था दी गई है ।

अनुच्छेद 22 (1) के अनुसार, किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के बाद

उसकी गिरफ्तारी के कारण शीघ्र बताये जाऐंगे । उसे बिना कारण बताये कस्टडी में नहीं रखा जा सकता । उसे अपनी पसन्द के वकील से सलाह लेने तथा अपनी रक्षा करने का अवसर दिया जायेगा ।

अनुच्छेद 22 (2) के अनुसार, किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के बाद उसकी गिरफ्तारी से 24 घंटे के भीतर, गिरफ्तारी के स्थान से न्यायालय जाने तक का समय छोड़कर नजदीकी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करना होगा तथा मजिस्ट्रेट द्वारा दी गई अवधि से अधिक समय तक उसे कस्टडी में नहीं रखा जायेगा ।

अनुच्छेद 22 (3) के अनुसार, गिरफ्तार किया गया कोई व्यक्ति कोई व्यक्ति उस समय तक यदि शत्रु देश का निवासी है या प्रतिबंधक गिरफ्तारी (Preventive Detention) वाले किसी कानून के अंतर्ग गिरफ्तार किया गया है, तब ऐसे व्यक्ति के लिए अनुच्छेद 22 (1) और 22 (2) की बातें लागू नहीं होगी । ऐसे व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी के कारण बताना आवश्यक नहीं तथा उसे 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं ।

अनुच्छेंद 22 (4) के अनुसार, शास प्रतिबंधक गिरफ्तारी वाले किसी कानून के तहत किसी व्यक्ति को तीन माह से अधिक अवधि के लिए कस्टड़ी में नहीं रख सकता । (क) तीन माह से अधिक अवधि की कस्टडी के लिए उन तीन माह के भीतर, शासन को उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सलाहकार समिति से रिपोर्ट प्राप्त करनी होगी, जिसमें यह लिखा हो कि उस व्यक्ति को 3 माह से अधिक अवधि के लिए कस्टडी में रखने के पर्याप्त कारण हैं । परन्तु यह अवधि संसद द्वारा अनुच्छेद 22 (7) (ख) के अनुसार पारित अधिकतम अवधि से अधिक नहीं होगी या (ख) ऐसे व्यक्ति को अनुच्छेद 22 (7) (क) और (ख) के अधीन संसद द्वारा बनाये गए विधि के प्रावधानों के अनुसार कस्टडी में रखा जायेगा ।

अनुच्छेद 22 (5) के अनुसार, प्रतिबंधक गिरफ्तारी वाले किसी कानून के अंतर्गत पारित किये गए किसी आदेश का पालन कर जब किसी व्यक्ति को कस्टडी में लिया जाता है, तब उस व्यक्ति को शीघ्र यह सूचित करना होगा कि वह आदेश किन आधारों पर पारित किया गया है ताकि उस व्यक्ति को उस आदेश के विरूद्ध अभ्यावेदन (Reprsentation) करने का अवसर मिले ।

अनुच्छेद 22 (6) के अनुसार, यदि आदेश पारित करने वाला अधिकारी यह मानता है कि आदेश के तथ्यों की अनुच्छेद 22 (5) के अनुसार सूचित करना जनहित विरोधी है, तब वह ऐसे तथ्य सूचित नहीं करेगा ।

(क) किन परिस्थितियों में, किन वर्गों के मामलों में किसी व्यक्ति को प्रतिबंधक गिरफ्तारी के कानून के अंतर्गत गिरफ्तार करने पर सलाहकार समिति के सलाह के बिना 3 माह से अधिक अवधि के लिए कस्टडी में रखा जा सकता है ।

(ख) प्रतिबंधक गिरफ्तारी में, किन वर्गों के मामलों में, किसी व्यक्ति को कितनी अधिकतम अवधि तक कस्टडी में रखा जा सकता है ।

(ग) सलाहकार बोर्ड द्वारा कैसी जाँच की प्रक्रिया अपनानी चाहिये ।

शोषण के विरूद्ध अधिकार :

प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार तो संविधान द्वारा दिया गया है, परन्तु समाज कमजोर, पिछड़े हुए और गरीब वर्गों को उनकी मजबूरी का फायदा लेकर कोई व्यक्ति या राज्य शोषण करता है तो ऐसे शोषण के विरूद्ध कार्यवाही करने का संविधान द्वारा अधिकार दिया गया है ।

अनुच्छेद 22 के अनुसार, मानव की तस्करी और बलपूर्वक श्रम करने का निषेद्य किया गया है ।

1. यदि कोई किसी व्यक्ति की तस्करी करता है, बेगार करवाता है तथा किसी प्रकार का जबरदस्ती से काम करवाता है तो वह प्रतिबंधित है और जो कोई इस प्रावधान का उल्लंघन करता है, तो वह कानून के अनुसार दण्डनीय अपराधी होगा ।

2. राज्य सार्वजनिक हितों के लिए अनिवार्य सेवा घोषित कर सकता है, परन्तु ऐसी सार्वजनिक सेवा घोषित करने में राज्य केवल धर्म, मूलवंश, जाति या वर्ग के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता ।

अनुच्छेद 24 के अनुसार, कारखाने आदि में बालकों के रोजगार का निषेद्य किया गया है । 14 वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खान में रोजगार नहीं दिया जा सकता तथा उसे किसी धोखेदायक काम में नहीं लगाया जा सकता ।

धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 राज्य की धर्मनिरपेक्षता पर बल देते हैं, जो भारत के लोकतांत्रिक और कल्याणकारी भाव के प्रति प्रतिबद्धता के लिए आवश्यक हैं । भरत के राज्य अपना खुद का कोई एक धर्म प्रस्थापित नहीं कर सकते, न ही किसी एक धर्म विशेष को संरक्षण दे सकते हैं ।

अनुच्छेद 25 के अनुसार, अंतःकरण की और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता है ।

1. लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य को मद्देनजर रखते हुए और इस भाग के अन्य प्रावधानों को ध्यान में रखकर, सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता का और धर्म को अबाध रूप से मानने आचरण करने और प्रचार करने का समान अधिकार होगा ।

2. राज्य को यह अधिकार है कि वह,

(क) धार्मिक आचरण से संबंधित आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य धर्म निरपेक्ष कार्यों के लिए नियम बना सकते हैं या बंधन लगा सकते हैं, परन्तु ऐसा करते वक्त राज्य द्वारा धार्मिक स्वतंत्रता के सिद्धान्त का उल्लंघन नहीं होना चाहिए ।

(ख) सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए हिन्दुओं की सार्वजनिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों के लिए खुला करने के प्रावधान करें । यहाँ हिन्दुओं में बौद्ध, जैन और सिख धर्मों के लोगों का समावेश है । सिख धर्म के लोगों के लिए कृपाण धारण करना और उसे लेकर चलना उनके धर्म का अंग माना जायेगा ।

अनुच्छेद 26 के अनुसार, धार्मिक कार्यो के प्रबन्ध की स्वतंत्रता है । लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ को मद्देनजर रखकर प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय या उसके किसी अंग को निम्नलिखित अधिकार होगें –

(क) धार्मिक और धर्मदाय कार्यों के लिए संस्था स्थापित करना और उन्हें चलाना ।

(ख) अपने धार्मिक क्रियाकलापों का प्रबन्धन करना ।

(ग) स्थायी और अस्थायी सम्पत्ति अर्जित करना और उसका स्वामित्व रखना ।

(घ) विधि के अनुसार ऐसी सम्पत्ति का प्रबंधन करना ।

अनुच्छेद 27 के अनुसार, किसी विशेष धर्म को बढ़ाने के लिए, करों के भुगतान के संबंध में स्वतंत्रता दी गई है । किसी व्यक्ति को ऐसे करों का भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा, जिनकी प्राप्तियाँ किसी विशिष्ट धर्म या धार्मिक सम्प्रदाय की वृद्धि या रखरखाव के खर्चों में समायोजित की गई है ।

अनुच्छेद 28 के अनुसार, 1) राज्य की निधि से पूर्णतः सहायता प्राप्त शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी ।

2) उपरोक्त बात ऐसी शिक्षा संस्था पर लागू नहीं होगी, जिसका प्रशासन राज्य करता है, परन्तु उसकी स्थापना किसी ऐसे विन्यास या न्यास द्वारा की गई है, जिसके अनुसार उन संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है ।

3) राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य निधि से सहायता पाने वाली शिक्षा संस्था में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिये उसकी सहमति के बिना बाध्य नहीं किया जायेगा । उसी प्रकार उस संस्था में या उस संस्था से संल्गन स्थान में किसी व्यक्ति को उसकी बिना सहमति से धार्मिक उपासना में भाग लेने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा । यदि वह व्यक्ति अवयस्क है तो उसके संरक्षक की सहमति के बिना उसे धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा ।

संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार

अनुच्छेद 29 के अनुसार, अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण होगा ।

1. भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के समूह को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाये रखने का अधिकार होगा ।
2. राज्य द्वारा घोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल उसके धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या उनमें से किसी एक के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा ।

अनुच्छेद 30 के अनुसासर, शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों को अधिकार होगा ।

1. धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने का और उनके प्रशासन का अधिकार होगा ।

1 क) अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा स्थापित और प्रशासित संस्था को सम्पत्ति को अनिवार्य रूप से अर्जित करने के लिए प्रावधान करने का कानून बनाते वक्त राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसी सम्पत्ति को अर्जित करने के लिए रकम इतनी नियत करेगा कि अल्पसंख्यक वर्गों द्वारा शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और उनके प्रशासन के अधिकार का उल्लंघन न हो ।

2. शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने के लिए राज्य किसी शिक्षा संस्था के साथ इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा संचालित की जा रही है ।

संविधानिक उपचारों का अधिकार

(अनुच्छेद 32)

अनुच्छेद 32 के बारे में डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा था, ''यदि कोई मुझसे पूछे कि संविधान का कौनसा अनुच्छेद सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जिसके बिना यह संविधान कुछ भी नहीं है, तो मैं कहूँगा इस अनुच्छेद के अलावा अन्य कोई अनुच्छेद नहीं है । यह संविधान का प्राण और हृदय है ।''

संविधान में मूलभूत अधिकारों को प्रदत्त करने का तब तक कोई औचित्य नहीं रहता, जब तक उन्हें सही तौर पर अमल में लाने की गारण्टी नही दी जाती । संविधान, मूलभूत अधिकारों के अमल की गारण्टी, कार्यपालिका और विधिमण्डल दोनों के कार्य के संबंध में देता है । यदि संविधान का कोई अनुच्छेद मूलभूत अधिकारों की गारण्टी के विरूद्ध है तो निरस्त करने का अधिकार न्यायपालिका को है । इन अधिकारों के पालन के लिए न्यायपालिका राज्य की किसी भी हस्ती के विरूद्ध रिट (Writ) जारी कर सकती है ।

अनुच्छेद 32 के अनुसार, यदि किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों का हनन हुआ है तो ऐसे प्रत्येक नागरिक को सर्वोच्च न्यायालय में सीधे आवेदन दाखिल करने का अधिकार है । अनुच्छेद 32 (1) के अनुसार सवोच्च न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त है कि वह मूलभूत अधिकारों के पालन के लिए आवश्यकतानुसार आदेश, निर्देश या रिट जारी कर सकता है । रिट (Writ) पाँच प्रकार की होती है –

(1) Habeas corpus (बंदी प्रत्यक्षीकरण) – किसी व्यक्ति को कैदी बनाया गया है तो उसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए बाध्य करना और उसे केदी बनाने के कारण को जानना और यदि उसे न्यास संगत कैदी नहीं बनाया गया है तो उसे मुक्त करना । उसी प्रकार किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के गैरकानूनी तरीक से कैदी बनाया है तो उसे न्यायालय द्वारा मुक्त करना । इस प्रकार, किसी भी व्यक्ति को उसके व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार से राज्य द्वारा या व्यक्ति द्वारा अकारण वंचित नहीं किया जा सकता ।

(2) Mandamus (परमादेश) – किसी व्यक्ति, अधिकारी, शासन या न्यायालय द्वारा यदि जनता के प्रति अपने कार्य का निर्वहन नहीं किया गया तो सर्वोच्च न्यायालय उनके लिए आदेश जारी कर सकता है । यह रिट मूलभूत अधिकारों के क्रियान्वयन तथा उनसे संबंधित अन्य कार्यों के लिए जारी की जा सकती है ।

(3) Prohibition (प्रतिषेध) – इस रिट के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय निचली अदालत को कुछ बातें नहीं करने हेतु प्रतिबंधित करते हैं ।

(4) Certiorari (उत्प्रेषण) – प्रतिषेध में निचली अदालत गलत आदेश, जो उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं आता, पारित करने के लिए रोक लगा दी जाती है, परन्तु उत्प्रेषण में निचली अदालत द्वारा आदेश पारित करने के बाद उसे निरस्त करने का आदेश किया जाता है ।

(5) Quo-warrnato (अधिकार–पृष्छा) – न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त है कि वह किसी कर्मचारी द्वारा सरकारी या सरकार के अधीन कार्यालयों में पेश दस्तावेजों की जाँच करें ओर यदि दस्तावेज गलत पाये जाते हैं तो उस कर्मचारी की नियुक्ति रद्द की जा सकती है ।

संविधान द्वारा उपरोक्त रिट जारी करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को दिया गया है । आवश्यकता पड़ने पर संसद यह अधिकार अन्य न्यायालयों को दे सकती हैं । सर्वोच्च न्यायालय का गठन मौलिक अधिकारों के संरक्षण और गारण्टी के लिए हुआ है । इसलिए उसका दायित्व है कि मौलिक अधिकारों के हनन के हर आवेदन को स्वीकार करें और आवेदक को न्याय दें ।

यह जगजाहिर तथ्य है कि हमारा संविधान स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुता के आधार पर बना हुआ है । प्रत्येक नागरिक के अधिकारों की सुरक्षा की गारन्टी उसमें दी गई है, किन्तु पिछले कुछ वर्षों से हमारे संविधान की समीक्षा को लेकर उसमें परिवर्तन को लेकर काफी हलचल मची हुई है । भारत के छोटे–बड़े लगभग सभी समाचार पत्र इसको सुर्खियों में छाप रहे हैं । इसके पक्ष और विपक्ष में विद्वानों के लेख छापे जा रहे हैं । सभी के अपनी–अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं और अभी भी यह मसला गरमाया हुआ है । बुद्धिजीवियों, राजनीतिज्ञों के दो खेमे बन गए हैं । इसका अन्त कहाँ और किस रूप में होगा, अभी यह भविष्य के गर्भ में हैं, किन्तु एक बात उजागर हो गई है कि भारत का पूरा दलित वर्ग इस परिवर्तन और समीक्षा के मुद्दे पर उद्धेलित हो उठा है । उसका मानना है कि एकाएक संविधान समीक्षा और उसके परितर्वन की आवश्यकता क्यों पड़ गई ? ऐसी और बातें करने वालों की नियत ठीक नहीं है । देश में और भी अनेक महत्वपूर्ण मुद्दे है – लोगों को रोटी नहीं मिल रही हैं, पानी तक नहीं मिल रहा है, बेरोजगार हाथों को काम नहीं मिल रहा है, घर–घर में शिक्षा का प्रकाश नहीं पहुँच रहा है, महिलाओं का निरन्तर उत्पीड़न हो रहा है । ऐसी समस्याओं से जूझ रही गरीब जनता के सामने यह संविधान परिवर्तन का शिगूफा क्यों छेड़ा गया है ? विचारणीय है ।

भारत के पूर्व प्रथम नागरिक महामहिम राष्ट्रपति के.आर. नारायणन ने इस मुद्दे के छिड़ते ही अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए एक महत्वूपर्ण बात कही थी – ''संविधान समीक्षा से पूर्व इस पर विचार करने की आवश्यकता है कि पिछले पचास वर्षों की असफलताओं के लिए हमारा संविधान जिम्मेदार हैं या संविधान चलाने वाले ।'' इस एक ही वाक्य में कितनी बड़ी बात कह गऐ हैं हमारे राष्ट्रपति ।

हमारे संविधान के प्रमुख एवं कुशल शिल्पी बाबा साहेब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने अपनी दुरदर्शिता का परिचय देते हुए अपनी आशंका व्यक्त करते हुए कहा था – ''संविधान ही अच्छा हो और उसे चलाने वाले बुरे हुए तो वह निःसंदेह बुरा हो जायेगा । इसी तरह वह कितना ही बुरा हो, चलाने वाले अच्छे हुए तो वह अच्छा हो जाएगा । संविधान की सफलता केवल उसी पर निर्भर नहीं है । वह तो केवल राज्य के अंग जैसे न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका देता है । इसका चलना तो लोगों और उनके द्वारा चुनी गई पार्टियों पर निर्भर करता है । उनहोंने आशंका व्यक्त करते हुए आगे कहा था – '' क्या पता देश की जनता और उसकी पार्टियाँ कैसा व्यवहार करें ? उनके उल्लेख के बिना संविधान पर निर्णय देना निरर्थक है ।'' ''उन्होंने एक और महत्वपूर्ण बात कही थी – संविधान बनाते समय संविधान सभा के सामने कोई पार्टीगत हित नहीं है । यदि भावी संसद संशोधन के लिए बैठी तो उसके सदस्य पार्टीगत आधारों पर चलेंगे और ऐसे संशोधन कर सकते है, जो उनकी पार्टियों को वो हासिल करवा दें, जो वह संसद के जरिये नहीं ले पाई । संसद के पास निहितार्थ होंगे, जो संविधान सभा के पास नहीं है ।

अन्त में बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने अपनी बात का समापन करते हुए कहा था – ''मैं समझता हूँ संविधान अच्छा, लचीला और शांति व युद्ध में देश को जोड़े रखने लायक मजबूत है । यदि मुझे अनुमति हो तो मैं कहूँगा कि यदि नए संविधान के अन्तर्गत चीजे गलत हुई तो इसलिए नहीं होगी कि हमारे पास बुरा संविधान है, हमें यह कहना होगा कि व्यक्ति गलत थे ।''

कितनी सही साबित हुई है बाबा सहेब डॉ. अम्बेडकर की आशंकाएँ । संविधान में अब तक अनेकों संशोधन हो चुके हैं । हर पार्टी ने अपने हितों के अनुरूप उसमें संशोधन कर दिए है । उनकी स्वार्थपूर्ति के आगे हमारा लोकतंत्र ही चरमरा कर रह गया है । लोकतंत्र का स्थान अर्थतंत्र ने ले लिया है । अपराध जगत, भ्रष्टचार, भुजबल के सहारे लोकतंत्र का नाटक खेला जा रहा है । अमीरों के पैसों से गरीबों के वोट खरीद कर लोकतंत्र का गला घोंटा जा रहा है ।

लोकतंत्र का अर्थ होता है – जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा शासन । आज तीनों ही बातें व्यवहार में कहीं नजर नहीं आती । आज बिल्कुल

इसका उल्टा हो रहा है – आज पूँजीपतियों का, पूँजीपतियों के लिए, पूँजीपतियों द्वारा शासन हो गया है । यही नाटक खेला जा रहा है लोकतंत्र का हमारे देश में और यहाँ की गरीब जनता को निरन्तर ठगा जा रहा है । उसकी सुनने वाला कोई नहीं है । वह तो दिन रात दो जून की रोटी, तन ढकने को कपड़ा और सिर छुपाने के लिए चार गज जमीन ढूँढती रहती है ।

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर इस बात को पहले ही जान गये थे कि इस देश में सच्चा लोकतंत्र लाने के लिए बड़ी मर्यादाएँ, बड़ी आचार संहिताए बनानी होगी । भारत की लोकतंत्रीय व्यवस्था जो कि संविधान के प्रमुख शिल्पी डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर की दी हुई व्यवस्था है । उनके अतिरिक्त ऐसा कोई राजनेता या जननेता नहीं हुआ, जिसने यह प्रयास किया हो कि जो लोग जनता के प्रतिनिधि बनकर सत्ता की कुर्सियों पर बैठे, उनमें देश का शासन चलाने की शैक्षणिक योग्यता भी हो और वह चरित्र भी हो जो पद की गरिमा और पदधारी की निष्ठा की भी रक्षा कर सके ।

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने इस देश को सच्चे लोकतंत्र के रूप में विकसित करने के लिए जो परिश्रम किया और जो संघर्ष किया है, उसकी कल्पना मात्र से हमें रोमांच हो जाता है । उन्होंने अकेले ने इतना काम किया है कि जितना सैकड़ो आदमी मिल कर नहीं कर सकते । उन्होंने दिन के चौबीस घंटों में से उन्नीस–उन्नीस घंटे काम किया है और वह भी इस गति से कि उसका अन्दाज हम नहीं लगा सकते । वहीं लगा सकते हैं, जिन्होंने बाबा साहेब को देखा है ।

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर की सदैव कामना यही रही कि जो व्यक्ति सत्ता की कुर्सियों पर बैठे, वे देश की जनता के प्रति उत्तदायी हों । इतिहास ने उन्हें इस कटु सत्य से परिचित कराया था कि भारत में सिंहासन पर बैठने वाले राजा–महाराजाओं में चन्द अपवादों को छोड़कर वे कभी जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं रहे ।

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि राजनीति में आने वाले, देश की बागडोर संभालने वाले देश प्रेम की भावना से ओतप्रोत हों । ये लोग देश के आम आदमी की तरह जीवन जीएँ । राजा–महाराजाओं, अंग्रेज अफसरों या रईसों जैसे

जीवन जीने की भूख लेकर संसद और विधान सभाओं की कुर्सियों के लिए हर तरह के हथकण्डें अपनाने वाली जमात के नहीं हो । बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने जन प्रतिनिधियों के लिए आचार संहिता संबंधी विधेयक जन प्रतिनिधि विधेयक (क्र. सं. 2) सन् 1950 में इसीलिए पेश किया था । इससे पूर्व मुम्बई प्रदेश विधान सभा के सदस्य के रूप में सन् 1937 में उन्होनें प्रस्तावित किया था कि मंत्रियों को मात्र 75 रूपए मासिक वेतन मिलना चाहिए ।

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने कहा था – मंत्रियों का वेतन निर्धारित करते समय सिद्धान्तों से नियन्त्रित होना आवश्यक है । 1. सामाजिक स्तर, 2. योग्यता, 3. जनतंत्र, 4. निष्ठा और प्रशासन की पवित्रता ।

सच्चे अर्थों में जनतंत्र तभी सार्थक हो सकता है, जब जन प्रतिनिधियों की प्रतिबद्धता आम आदमी के प्रति हो । देश के जन–जन के प्रति हो । जन प्रतिनिधियों की यह प्रतिबद्धता कायम रहे । वे जनता के स्तर के अनुरूप ही जीवन जीएँ । यदि ऐसा नहीं हुआ तो ऐसे लोग राजनीति में आ घुसेंगे, जिनका देश, देशवासियों और देशप्रेम से कोई सरोकार नहीं होगा ।

साँच को आँच कहाँ ''हम देख रहे हैं, आज वहीं हो रहा है, जिसका बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर को डर था । लोकतंत्र की हत्या कर दी गई है । वास्तव में विरोध पक्ष है ही नहीं, किसी के कोई आदर्श, सिद्धान्त नहीं । येन–केन–प्रकारेण वे सत्ता की कुर्सी से चीपके रहना चाहते हैं । अनाप–शनाप धन दौलत इकठ्ठी करने में जुटे है । देश की, समाज की उन्हें कोई चिन्ता नहीं । देश को इस तरह से लूट कर अपना घर भर रहे हैं, जैसे यह देश किसी और का हो । आज हमारे जनप्रतिनिधियों के जो चरित्र उजागर हो रहे हैं, वे किसी से छिपे नहीं है । इस संबंध में राष्ट्रीय नेता डॉ. राममनोहर लोहिया की भविष्यवाणी भी सही साबित हो रही है । उन्होंने कहा था – ''आने वाले समय में राजनीति भी रहेगी और राजनेता भी रहेंगे, किन्तु ये राजनेता देश और प्रदेश स्तर के नहीं होकर गाँव और कस्बे के स्तर के होंगे ।

इस देश के महान नेताओं की आशँका आज कटु सत्य के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हैं, देश और देशवासी जुड़ने के बजाए टूट रहे हैं । अपने दिल बड़े करने के बजाय निरन्तर संकीर्ण और स्वार्थी होते जा रहे हैं ।

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में राष्ट्र, देश जन–जन का था । राष्ट्र उनकी दृष्टि से किसी भी नेता, किसी भी दल से बड़ा और महत्वपूर्ण था । व्यक्तित्व की वह विराटता और राष्ट्रनिर्माण की जो अनन्य दृष्टि उनमें थी, उसे देखते हुए ही उन्हें स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माण का महत्ती कार्य सौंपा गया, जिसे उन्होंने बखूबी निभाया ।

❐

समाचार पत्र के स्वामित्व एवं अन्य विवरण के संबंध में घोषणा

(फार्म–4 नियम–7)

1.	समाचार पत्र का नाम	:	पूर्वदेवा
2.	प्रकाशन का स्थान	:	मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी, बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने उज्जैन (म.प्र.) 456 010
3.	प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
4.	मुद्रक का नाम	:	पूनमचन्द बैरवा
	राष्ट्रीयता	:	भारतीय
	व पता	:	मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी, बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने उज्जैन (म.प्र.) 456 010
5.	प्रकाशक का नाम	:	––– तदैव –––
	राष्ट्रीयता	:	
	व पता	:	
6.	सम्पादक का नाम	:	डॉ. हरिमोहन धवन
	राष्ट्रीयता	:	भारतीय
	व पता	:	मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी, बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने उज्जैन (म.प्र.) 456 010
7.	स्वामी का नाम	:	''मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी''
	व पता	:	बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने उज्जैन (म.प्र.) 456 010

मैं पूनमचन्द बैरवा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिया गया विवरण सत्य है ।

हस्ताक्षर

पूनमचन्द बैरवा

प्रकाशक

उज्जैन

दिनांक : **31 मार्च, 2016**

पूर्वदेवा

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी की सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

'पूर्वदेवा' के प्रकाशन का उद्देश्य मुख्यतः भारतीय समाज व्यवस्था में व्याप्त मानवीय विषमताओं के उन्मुलन, दलितों में मानवीय-अस्मिताबोध एवं अधिकार-चेतना उत्पन्न करने और तद्जनित सामाजिक परिवर्तन की भूमिका तैयार कर मानवीय मूल्यों की स्थापना के निमित्त ऐतिहासिक एवं सामाजिक आधार पर विविधपक्षीय, तथ्यपूर्ण एवं शोधपरक अध्ययन एवं चिंतन कोप्रवर्त्त करना है। जिससेकि दलित, सर्वहारा वर्ग का सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्रों में समुचित विकास एवं मानवीय सम्मान का मार्ग प्रशस्त किया जा सके और देश में राष्ट्रीय एकरूपता, सामाजिक न्याय एवं सहिष्णुता की भावना वास्तविक आकार ग्रहण कर सके।

अतएव, इस हेतु विद्वान लेखकों, अनुसंधानकर्ताओं सेमौलिक लेख, शोध आलेख एवं अनुभवजन्य, तथ्यपरक लेख, पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशनार्थ सादर आमंत्रित हैं।

- लेखको से आग्रह है कि अपने लेख सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित दोप्रतियों / **PM-5** कृति देव10 **(Kruti Dev 10)** में टाईप, सीडी एवं एक प्रिंट आउट सहित भेजें। **email-mpdsaujn@gmail.com**
- प्रत्येक आलेख के साथ आवश्यकतानुसार फुटनोट्स अथवा संदर्भ सूची अवश्य संलग्न की जानी चाहिये।
- लेख सामान्यतः हिन्दी में लिखेहों। विशेष स्थिति में अंग्रेजी भाषा में लिखेगयेलेख भी स्वीकार किये जा सकेंगे
- लेख अन्यत्र प्रकाशित नहीं होना चाहिये। हाँ, यदि किसी अन्य भाषा में प्रकाशित होचुके हों तो उनका हिन्दी में अनुवाद भी अपवाद रूप में प्रकाशनार्थ स्वीकार किया जा सकता है।
- सम्पादक मंडल कोकिसी भी लेख कोप्रकाशन हेतु स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करनेका पूर्ण अधिकार है। अतः वापसी हेतु रचना के साथ लेखक का पता लिखा लिफाफा उपयुक्त डाक टिकट के साथ संलग्न होना चाहिये।
- समीक्षार्थ नव प्रकाशित पुस्तकों की दोप्रतियाँ प्रेषित की जानी चाहिये।
- प्रत्येक पुस्तक समीक्षा लेख के साथ समीक्षित पुस्तक की एक प्रति अवश्य संलग्न की जानी चाहिये।
- पूर्वदेवा का सतत् प्रकाशन सुधी पाठकों एवं लेखकों के उदार सहयोग पर निर्भर है, अतएव विशेष अनुरोध है कि पूर्वदेवा के ग्राहक बनकर, अपना आत्मीय सहयोग प्रदान करें।

ग्राहक शुल्क की दरें (Rates of Subscription) इस प्रकार हैं-

*	आजीवन शुल्क	संस्थागत रू.2500/-	वैयक्तिक रू.2000/-
*	वार्षिक शुल्क	संस्थागत रू.350/-	वैयक्तिक रू.300/-

क्रयादेश एवं शुल्क सहित सभी प्रकार के पत्र व्यवहार का पता :

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

बाणभट्ट मार्ग, सेंट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन(म.प्र.)456010

म.प्र.दलित साहित्य अकादमी के लियेपी.सी बैरवा द्वारा न्यू गुलाब प्रिन्टर्स, उज्जैन-से मुद्रित एवं बाणभट्ट मार्ग, उज्जैन(म.प्र) से प्रकाशित ***आर.एन.आई.रजिस्ट्रेशन नं. 61954/95***

सम्पादन- डॉ.हरिमोहन धवन **ISSN 0974-1100**